226
खंडोएसनेम

महामोक्ष तंत्र

अनुवादक :- एस. एन. खण्डेलवाल

भारतीय विद्या संस्थान
वाराणसी

महामोक्षतन्त्रम्

महारुद्रयामलतन्त्रान्तर्गतशिवशक्ति सवादरूप

(मूल एवं भाषानुवाद)

अनुवादक

एस० एन० खण्डेलवाल

प्रकाशक

भारतीय विद्या संस्थान

वाराणसी

@ प्रकाशक

भारतीय विद्या संस्थान
सी २७/५९, जगतगंज, वाराणसी

प्रथम संस्करण–१९९३ ई०

मूल्य १५ रु०

मुद्रक

पी० के० प्रिन्टर्स एण्ड पब्लिकेशन
के १८/४३ नेपाली कोठी
ब्रह्माघाट, वाराणसी

निवेदन

महामोक्ष तंत्र का भाषानुवाद प्रस्तुत करते समय यह निवेदन करना आवश्यक है कि श्री भगवान् शंकर के मुख से विनिर्गत होने के कारण साधक समाज में यह सदियों से अत्यन्त उपादेय तंत्र के रूप में स्वीकृत रहा है। तंत्र वाङ्मय में नित्य तथा अनित्य, दोनों स्थितियों के लिये समानभाव से उपयोगी विद्या समूह का वर्णन किया गया है। नित्य अर्थात् निर्वाण प्रदायिनी विद्या और अनित्य अर्थात् ऐहिक फल दायिनी विद्या का प्रतिपादन तंत्र शास्त्र की विशेषता रही है। इस तन्त्र में अनित्य स्थिति की तुलना में नित्य स्थिति का महत्व अत्यधिक स्वीकृत है, इसीलिये प्रस्तुत ग्रंथ के अध्ययन से मोक्षदायिनी नित्य विद्या का ही अनुशीलन करने की प्रेरणा प्राप्त होने लगती है।

तंत्रशास्त्र मात्र ही गुरु की महिमा से महिमान्वित तथा ओतप्रोत है। गुरु के अभाव में इसकी प्रणाली तथा प्रक्रिया का यथार्थ ज्ञान हो सकना दुष्कर भी माना गया है। आधुनिक काल में यथार्थ गुरु का सामीप्य मिल सकना अत्यन्त कठिन है। इस स्थिति में कल्याणकारी साधक हतोत्साहित भी हो सकता है। उसे सम्यक् पथ का सन्धान मिल सकना कठिन हो जाता है। करुणान्द्रहृदय भगवान् शंकर ने साधक की इस किंकर्तव्य-विमूढ़ स्थिति के लिये ही पथप्रदीप अथवा पथप्रदर्शक के रूप में तत्व का उपदेश इस तंत्र के माध्यम से दिया है जिसकी साधना इस ग्रंथ को पढ़कर साधकवर्ग प्रारम्भ कर सकता है। तदनुरूप साधना का फल है यथासमय सदगुरु की बाह्यजगत् अथवा अन्तर्जगत् में प्राप्ति !

ग्रन्थ के प्रारम्भ में उक्त है श्री चण्डी ने इस तन्त्र के सम्बन्ध में जब शंकर से जिज्ञासा प्रारम्भ किया था तब वे 'विपरीत रमण' अवस्था में थीं। विपरीत रमण का तात्पर्य है कि रमणकाल में नायिका नायक के

ऊपर आरूढ़ हो जाती है। यह भी एक रहस्यमय संकेत है। इसका लौकिक एवं जागतिक अर्थ लेना इस स्थल पर कदापि उचित नहीं है। इसका तात्पर्य यत्किंचित कहा जा रहा है। वस्तुतः शिव तथा शक्ति में कोई अभेद नहीं है। वे चन्द्रमा और उसकी चन्द्रिका के समान एक ही अद्वय-तत्व में द्विधा प्रतीत हो रही दो स्थिति मात्र हैं। चन्द्रमा अपने आप में निमज्जित है। उसे अपना संधान देने अथवा आत्मप्रकाश करने का कोई प्रयोजन ही नहीं है। शिव भी अपने आप में अपनी सत्ता में विभोर हैं। चन्द्रमा की चाँदनी ही चन्द्रमा की सत्ता का अवबोध हमें कराती है। ऐसी स्थिति में चाँदनी ही प्रधान हो जाती है और चन्द्रमा अप्रधान हो जाता है। इसी प्रकार शिव में आत्मलीनावस्था है। वह स्वात्मानन्द में निमज्जित सा पड़ा है। इस स्थिति में शक्ति ही प्रधान हो जाती हैं क्योंकि शिव में कोई वाह्य उल्लास नहीं रहता। शक्ति का विलास ही उसका उल्लास है। अतः शक्ति ही प्रधान है। शक्ति ही जगत प्रपंच का विस्तार करती है। जैसे विपरीत रमण के काल में नायक जड़वत् पड़ा रहता है और नायिका द्वारा ही समस्त रमण कृत्य सुसम्पादित होता है, उसी प्रकार शिव भी परमानन्द से तल्लीन सा पड़ा रहता है। वह इस स्थिति में निःस्पन्द रहता है। उसके वक्षस्थल पर आसीना शक्ति ही स्पन्दात्मिका होकर जगत् रूपी महाविस्तार का अनुभव करती है। यही है शक्ति का विपरीत रमण।

यह समस्त जगत शक्ति का ही क्रीड़ाङ्गण है। शिव इस समस्त सृष्टि से निरपेक्ष है। मात्र द्रष्टा है। यद्यपि अवरोहक्रम में शिव ही पंचमहाभूत का रूप धारण करता है, तथापि उन पंचमहाभूतों में शक्ति की ही स्पन्द-सत्ता क्रियाशील रहती है। इसीलिये पंचमहाभूतात्मक स्थिति में शिव शववत् है। शक्ति की कृपा से ही उस पंचमहाभूतात्मक स्थिति में वह शवावस्था शिवावस्था में उपनीत हो जाती है। सौन्दर्यलहरी में इसी सत्य का प्रतिपादन किया गया है। अतः जहां भी रति है (सक्रियता है) वहीं पर शक्ति की ही सक्रियता है। यही है विपरीत रमण का तत्वार्थ!

इस महाशक्ति का ही अंश अनादि जीव है। ऐसे अनन्त अनादि जीवाणु महाकालीरूपिणी परासत्ता से निर्गत होकर आधाररूपी पृथ्वी पर पतित होते रहते हैं। यहां यह ज्ञातव्य है कि इस भूमण्डल को ही पृथ्वी समझ लेना एक भूल है। अनन्त ब्रह्माण्ड में जहाँ भी पृथ्वी तत्व की सत्ता ग्रहों-नक्षत्रों-आकाश गंगा के गर्भ में छिपे तारकों में है, वहां भी पृथ्वी तत्व की ही सत्ता है। ऐसे अनादि जीवाणु शक्ति युक्त होते हैं। ये अपनी स्वशक्ति की ही क्रीड़ा के कारण स्वयं को स्थावर-जंगम कीट-पतंग आदि के रूप में जानने लगते हैं। क्रमशः इन्हें दुर्लभ मनुष्य शरीर की प्राप्ति होती है। और जन्म-मृत्युरूप चक्र अनुभव होने लगता है।

महाशक्ति अपनी ही क्रीड़ा के कारण निर्गत इन अनादि जीवाणुओं की जन्म-मृत्यु रूप चक्रात्मिका गति और दुःस्थिति को देखकर करुणार्द्र-हृदय हो जाती हैं। महाशक्ति को यह आभास ही नहीं रहता कि ये असंख्य अनादि जीवाणु उसके अपने ही तैजस तत्व से स्फुलिङ्गवत् निर्गत होकर किस प्रकार से सृष्टिक्रम में पतित हो जाते हैं? यह एक स्वाभाविक प्रक्रिया के कारण होता है। यह है शक्ति का दृश्यत्व रूप। यह द्रष्टारूप नहीं है। दृश्यत्व कभी भी अपने कारण का अनुसंधान नहीं कर सकता। उसका अनुसंधान द्रष्टारूप ही कर सकता है। शिवरूपी निरपेक्ष द्रष्टा इस अनन्त सृष्टिप्रपंञ्च से सर्वथा वियुक्त है। वह केवलमात्र इसका साक्षी है। द्रष्टारूप होने के कारण शिव इस निखिल प्रपञ्च की उत्पत्ति-स्थिति तथा संहार का साक्षी है। शक्ति कभी भी स्रष्टा एवं साक्षी नहीं है। अतः करुणार्द्रहृदय महाशक्ति अपने में ही स्थित द्रष्टारूप शिव से इन महा-प्रपंच का कारण पूछती हैं। यह सिद्धान्त है कि एक ही अद्वय तत्व स्वयं ही प्रश्नकर्त्ता एवं समाधानकर्त्ता का दो रूप धारण करके जगत एवं प्राणियों के कल्याणार्थ (अधिकारी भेद के अनुरूप) अनेक तन्त्रों की अवतारणा करता है।

यह तन्त्र भी इसी प्रकार से उपदिष्ट हैं। यहां पर भी स्मरण रखना होगा कि एक ही तन्त्रग्रंथ को पढ़कर साधना में प्रवृत्त नहीं होना

चाहिए। जिन्हें उपयुक्त तथा सिद्धगुरु का साक्षात्कार नहीं प्राप्त हुआ है अथवा जिन्हें अन्तर्गुरु का स्नेहस्पर्श प्राप्त नहीं हो सकता है, वे केवल एक ही तन्त्रग्रंथ को पढ़कर तदनुरूप साधना या अनुष्टान करने में प्रवृत्त होकर लाभ की अपेक्षा हानि के ही भागी हो जाते हैं। अतः गुरुसंग से रहित व्यक्ति को चाहिये कि उपलब्ध सभी तन्त्रग्रंथों का सम्यक् अध्ययन करके समस्त आनुषंगिक विधाओं से अवगत होकर अपने विवेक के अनुसार साधन मार्ग का चयन करके, तब तन्त्र साधना का वरण करें। इससे अनेक अन्तराय तथा विघ्न विदूरित हो जाते हैं।

निर्जला एकादशी, १९९३ ई०
निवेदक

बी सी ३१।३० लंका, वाराणसी एस० एन० खण्डेलवाल

विषयानुक्रमणिका

		पृष्ठ संख्या
प्रथम पटल—ब्रह्मनिरूपण,	—	१–६
द्वितीय पटल—पार्थिव सृष्टि, जन्म मृत्यु आदि	—	७–११
तृतीय पटल—प्रकृति द्वारा जगत् सृष्टि, गायत्री, षडङ्गन्यास, जीवन्यास, गायत्रीपूजा, आपोमार्जन, महापद्मस्य परमगुरु पूजा, प्रणाम,	—	११–१९
चतुर्थपटल— सन्यासी, अवधूत, ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वृहद् ब्रह्माण्ड, योग क्रिया,	—	१९–२३
पंचम पटल—भुव आदि लोक, गोलोक में राधा-कृष्ण, वैकुण्ठ में विष्णु,	—	२३–२६
षष्ट पटल—महापद्म एवं रुद्रालय, महाविद्या भद्रकाली की कृपा से ब्रह्मादि की सृष्टि आदि	—	२४–३२
सप्तम पटल—महापद्म से उर्ध्वस्थ भुवनेश्वरी, भूःस्वः-में ब्रह्मादि की स्थिति, भुवनेश्वरी की प्रधानता, महर्लोक तत्व	—	३२–३६
अष्टम पटल—षोडशपत्र युक्त पद्म, सदाशिव तथा महागौरी महिमा	—	३६–३८
नवम पटल—ज्ञानपद्म, तपः-महाजनः लोक मुक्ति प्राप्ति	—	३९–४३

दशम पटल--सुमेरु पर सहस्त्रदल, चतुर्दशभुवन सप्त पाताल, सप्तस्वर्ग, विष्णुसृष्टि, कल्पवृक्षस्य चणकाकार महाकाली, सप्तलोकस्य निरंजन स्वरूप	—	४३-५४
एकादशपटल-तत्वज्ञानोपदेश	—	५४-६१
द्वादश पटल--वैष्णव तत्व, गुरु, मन्त्र, वर्ण, देव ध्यानादि तत्व,	—	६२-६४
त्रयोदश पटल--श्री दशार्ण मन्त्र, उपदेष्टा गुरु, गृहस्थ कर्त्तव्य, सन्यास निर्णय,	—	६४-७६
चतुर्दश पटल--अवधूत तथा उसका कर्त्तव्य, वीरभाव द्वारा, मुक्ति प्राप्ति, परमहंस गृहस्थ, ब्रह्मचारी आदि का लक्षण, आचरण वर्णन	—	७७-८४

11909

महामोक्षतन्त्रम्

अथ प्रथमः पटलः

॥ ॐ नमः परमदेवतायै ॥

कैलासपर्वते रम्ये नानारत्नोपशोभिते।
विपरीतरतासक्ता चण्डी पप्रच्छ शंकरम् ॥१॥

श्रीचण्डिकोवाच

निराकारं निर्गुणञ्च स्तुति-निन्दाविवर्जितम्।
सुनित्यं सर्वकर्त्तारं वर्णातीतं सुनिश्चलम् ॥२॥
संज्ञाविरहितं शान्तं किमाकारं प्रतिष्ठितम्।
तस्मादुत्पत्तिर्देवेश किमाकारेण जायते ॥३॥

नानारत्न परिशोभित रमणीय कैलास पर्वत पर विपरीत रमण में आसक्ता चण्डी देवी ने शंकर से पूछा ॥१॥

श्रीचण्डिका पूछती हैं—हे देवाधिदेव ! जो समस्त जगत् का कर्त्ता है, वह आकाररहित, गुणहीन, स्तुति तथा निन्दा रहित, सुनित्य, सर्ववर्णातीत, सुनिश्चल, नाम-आख्यात रहित, शान्त है, वह किसी अवर्णनीय रूप में प्रतिष्ठित है। उससे समस्त सृष्टि की उत्पत्ति कैसे होती है ? ॥२-३॥

श्रीशंकर उवाच

शृणु देवि परं तत्त्वं वर्णातीताञ्च वैखरीम्।
गुणालयां गुणातीतां स्तुतिनिन्दाविवर्जिताम् ॥४॥
आकाररहितां नित्यां रोगशोकादिवर्जिताम्।
पूजायोगञ्च देवेशि स्वयमुत्पत्तिकारणम् ॥५॥
येन रूपेण ब्रह्माण्डो जायते शृणु तच्छिवे।
आकाशाज्जायते वायुर्वायोरुत्पद्यते रविः।
रवेरुत्पद्यते तोयं तोयादुत्पद्यते मही ॥६॥

श्रीशंकर कहते हैं – हे देवी ! श्रेष्ठतर तत्त्व को सुनो। समस्त वर्णों से अतीता, सकल गुणों की आश्रयस्वरूपा, समस्त गुणों से ऊर्ध्वतन अवस्थिता, स्तुति-निन्दा विरहिता, आकार के द्वारा अपरिच्छिन्ना, नित्यस्वरूपिणी, रोगशोकादि रहिता, पूज्यार्हा (पूजनीया), पर-तत्त्वस्वरूपिणी वैखरी ही स्वयं उत्पत्ति कारण है। जिस प्रकार से ब्रह्माण्ड सृष्ट हुआ है, उसे सुनो ! आकाश से वायु, वायु से सूर्य, सूर्य से जल, जल से पृथ्वी उत्पन्न होती है ।।४-६।।

पञ्चभूतैश्च ब्रह्माण्डा भवेयुः पर्वतात्मजे ।
ब्रह्माण्डस्थापनार्थाय कूर्मपृष्ठे ह्यनन्तकः ।।७।।
तन्मूर्ध्नि बालुकाकारा ब्रह्माण्डा बहवः स्थिताः ।
कारण्यवारिमध्ये तु कूर्मश्चरति नित्यशः ।
अहमेव त्रिशूलेन पालयामि पुनः पुनः ।।८।।

हे पर्वतात्मजे ! उक्त पंचभूतों से समस्त ब्रह्माण्डोत्पत्ति होती है। ब्रह्माण्ड समूह की रक्षा के लिये कूर्मपृष्ठ पर अनंत देव अवस्थान करते हैं। उनके मस्तक पर बालुका कण के समान अनन्त ब्रह्माण्ड अवस्थान करते हैं। कारण सलिल में कूर्म नित्य विचरण करते रहते हैं। मैं भी अपने त्रिशूल के द्वारा इस ब्रह्माण्ड का पुनः-पुनः पालन करता रहता हूँ ।।७-८।।

श्रीचण्डिकोवाच

किमाकारन्तु ब्रह्माण्डं तन्मे ब्रूहि महेश्वर ।
सृष्टिप्रकारं तन्मध्ये किमाकारं हि तत्त्ववित् ।।९।।

श्रीचण्डिका पूछती हैं—हे तत्त्वविद् महेश्वर ! इस ब्रह्माण्ड का आकार क्या है, इससे यह सृष्टि कैसे प्रकाशित हो रही है ? ।।९।।

श्रीशंकर उवाच

जन्तोराकारं ब्रह्माण्डं नानाविग्रहं पार्वति ।
ब्रह्माण्डं विग्रहं प्रोक्तं स्थूलक्षुद्रादिकं हि तत् ।।१०।।

मेरुः पर्वतस्तन्मध्ये तथा सप्तकुलाचलाः ।
मूलादिमस्तकान्तं वै सुमेरुर्नाम पर्वतः ।।११।।

श्रीशंकर कहते हैं—हे पार्वती ! नाना जन्तुओं के आकार का ब्रह्माण्ड है। यह ब्रह्माण्ड स्थूल तथा क्षुद्रादिरूप भी कहा गया है। इसके मध्य में सुमेरु पर्वत तथा सप्त कुल-पर्वत अवस्थित हैं। मूल से प्रारम्भ करके मस्तक पर्यन्त सुमेरु की अवस्थिति कही गयी है ।।१०-११।।

स्थितं मेरोरधोभागे द्व्यङ्गुल्यश्चोर्ध्वदेशतः ।
भूर्लोकादि महेशानि सप्तस्वर्गक्रमेण हि ।।१२।।
द्व्यङ्गुल्यो सप्तपातालास्तिष्ठन्ति परमेश्वरी ।।१३।।
सत्यलोके निराकारा महाज्योतिःस्वरूपिणी ।
माययाच्छादितात्मानं चणकाकाररूपिणी ।।१४।।
हस्तपादादिरहिता चन्द्रसूर्याग्निरूपिणी ।
मायावल्कलं सन्त्यज्य द्विधा भिन्ना यदोन्मुखी ।।१५।।

हे महेशानी ! सुमेरु पर्वत के निम्नदेश में दो अंगुल के प्रमाण में ऊर्ध्व भूर्लोक प्रभृति सप्तस्वर्ग अवस्थित हैं। निम्नदेश में दो अंगुल के प्रमाण स्थान में सप्तपाताल वर्तमान हैं। सत्यलोक में आकारहीना, महाज्योतिस्वरूपिणी, हाथ पैर अवयव से रहित, चन्द्र-सूर्य तथा अग्निरूपिणी चणकस्वरूपा महाशक्ति माया के द्वारा स्वयं को आवृत करके विराजित हैं। वे ही मायावल्कल को छोड़कर द्वैतरूपेण प्रकाशित होने के लिये उन्मुख होती हैं ।।१२-१३।।

शिवशक्तिविभागेन जायते सृष्टिकल्पना ।
प्रथमे जायते पुत्रो ब्रह्मसंज्ञो हि पार्वति ।।१६।।

उस स्थिति में (द्वैतरूपा) वे ही शिवशक्ति रूप में विभाजित हो जाती है। तदनन्तर सृष्टि की कल्पना होती है। हे पार्वती ! उस समय ब्रह्मसंज्ञक पुत्र का आविर्भाव होता है ।।१६।। (उस समय माँ कालिका उनसे कहती हैं—)

श्रीकालिकोवाच

शृणु पुत्र महावीर विवाहं कुरु यत्नतः।
एतच्छ्रुत्वा ततो ब्रह्मा उवाच सादरं प्रिये ॥१७॥

श्रीकालिका कहती हैं—हे महावीर पुत्र ! सुनो ! तुम यत्न के साथ विवाह करो ॥१७॥

त्वां विना जननी नास्ति शक्ति मे देहि सुन्दरीम् ।
तच्छ्रुत्वा जगतां माता स्वदेहोन्मोहिनीं ददौ।
द्वितीया सा महाविद्या सावित्री परमा कला ॥१८॥

श्रीकालिका की आज्ञा सुनकर ब्रह्मा कहते हैं कि तुम्हारे अतिरिक्त कोई भी सृजनकारिणी शक्ति नहीं है। अतः तुम मुझे सुन्दरी शक्ति प्रदान करो। यह सुनकर जगन्माता ने अपने देह से प्रकाशित मोहिनी शक्ति ब्रह्मा को प्रदान किया। यही मोहिनी शक्ति ही द्वितीया महाविद्या परमाकला सावित्री हैं ॥१८॥

अस्याः सङ्गं समासाद्य वेदविस्तारणं कुरु।
अनायासं सृष्टिकर्त्ता भव त्वं महीमण्डले ॥१९॥
द्वितीये जायते पुत्रो विष्णुः सत्त्वगुणाश्रयः ॥२०॥

श्रीकालिका ने आदेश दिया कि इस सावित्री शक्ति का संग करके तुम वेद का विस्तार करो। इस प्रकार तुम अनायास ही सृष्टिकर्त्ता बनो। अब द्वितीय पुत्र सत्त्वगुण युक्त विष्णु का प्रादुर्भाव होता है।

श्रीकालिकोवाच

शृणु पुत्र महावीर विवाहं कुरु यत्नतः।
तव दर्शनमात्रेण निष्कामो जायते पुमान् ॥२१॥

श्रीकालिका विष्णु से कहती हैं—हे महावीर पुत्र ! तुम यत्न के साथ विवाह करो। तुम्हारे दर्शन मात्र से लोग निष्काम होंगे ॥२१॥

कथं करोमि हे मातर्मोहिनीं देहि मे शिवे।
देहाच्छक्ति विनिर्गत्य ददौ तस्मै च कालिका ॥२२॥

श्रीविष्णु कहते हैं—हे जननी ! मैं कैसे विवाह करूँगा। तुम मुझे मोहिनी शक्ति प्रदान करो। तब जगज्जननी कालिका ने निजदेह से निर्गत शक्ति विष्णु को प्रदान किया ॥२२॥

वैष्णवीं तां महाविद्यां श्रीविद्यां परमेश्वरीम् ।
तामाश्रित्य महाविष्णुः पालयत्यखिलं जगत् ॥२३॥

यही विष्णुशक्ति परमेश्वरी महाविद्या श्रीविद्या हैं। इनका आश्रय लेकर महाविष्णु समग्र विश्व का पालन करते रहते हैं ॥२३॥

तृतीये जायते पुत्रो महायोगी सदाशिवः।
तं दृष्ट्वा सा महाकाली तुष्टियुक्ताभवन्मुदा ॥२४॥

तृतीय पुत्ररूप में महायोगी सदाशिव आविर्भूत हुये। उन्हें देखकर महाकाली आनन्दित तथा सन्तुष्ट हो गयीं ॥२४॥

महाकाली उवाच

शृणु पुत्र महायोगिन् ! मद्वाक्यं हृदये कुरु।
त्वां विना पुरुषः को वा मां विना कापि मोहिनी।
अतस्त्वं परमानन्द विवाहं कुरु मे शिव ॥२५॥

महाकाली ने उनसे कहा—हे महायोगी पुत्र ! मेरे वाक्य को सुनकर हृदय में धारण करो। तुम्हारे अतिरिक्त अन्य कोई पुरुष भी नहीं है, मेरे अतिरिक्त कोई भी शक्ति नहीं है। अतः हे परमानन्द शिव ! तुम मुझसे विवाह करो ॥२५॥

सदाशिव उवाच

यदुक्तं मयि हे मातस्त्वां विना नास्ति मोहिनी।
सत्यमेतद् जगन्मातर्मां विना पुरुषो न च ॥२६॥

अस्मिन् देहे संस्थिते च न करोमि विवाहकम्।
कुरु देहान्तरं मातः करुणा यदि वर्त्तते।
तत्क्षणे सा महाकाली ददौ भुवनसुन्दरीम् ॥२७॥

आदिभूता यथा काली तथा भुवनसुन्दरी।
तामाश्रित्य महायोगी संहरत्यखिलं जगत् ॥२८॥
शम्भोरष्टविभागश्च शक्तिश्चाष्टविधा भवेत्।
कालिकाद्या महाविद्या ह्यनेन परमेश्वरी ॥२९॥
इति ते कथितं कान्ते यथा ब्रह्मनिरूपणम्।
गोपनीयं प्रयत्नेन विद्योत्पत्तिर्यथा प्रिये ॥३०॥

॥ इति महामोक्षतन्त्रे सर्वतन्त्रोत्तमोत्तमे चण्डिकाशंकरसंवादे परब्रह्मनिरूपणं नाम प्रथमः पटलः ॥

सदाशिव कहते हैं— हे जननी ! तुमने मुझसे जो कहा है कि तुम्हारे अतिरिक्त कोई शक्ति नहीं है एवं हे जगज्जननी ! मेरे अतिरिक्त कोई पुरुष नहीं है, यह सत्य है। तथापि इस तुम्हारी देह के साथ विवाह करना उचित नहीं है। अतः हे जननी ! यदि मेरे प्रति तुम्हारी करुणा है, उस स्थिति में अन्य देह ग्रहण करो। यह सुनकर तत्क्षण महाकाली देवी भुवनसुन्दरी महाशक्ति के रूप में प्रादुर्भूत हो गयीं। महाकाली ने उन्हें सदाशिव को प्रदान किया ।।२६-२७।

आदिभूता महाकाली जैसी हैं, वैसी ही भुवनन्सुदरी हैं। उनका आश्रय लेकर महायोगी सदाशिव निखिल ब्रह्माण्ड का संहार करते रहते हैं ॥२८॥

शिव के अष्ट विभाग हैं। शक्ति के भी अष्ट विभाग हैं। हे परमेश्वरी ! इस प्रकार कालिका प्रभृति अष्ट महाविद्या प्रसिद्ध हैं। हे प्रिये ! जैसे ब्रह्मनिरूपण होता है, वह मैंने कहा। इसे विद्योत्पत्ति कहते हैं। यह गोपनीय है ॥२९-३०॥

॥ समस्त तन्त्रसमूह में श्रेष्ठतर चंडिका-शंकर-संवादरूप परब्रह्मनिरूपण नामक महामोक्षतन्त्र का प्रथम पटल समाप्त ॥

——

अथ द्वितीयः पटलः

श्रीचण्डिकोवाच

त्वत्प्रसादाच्छ्रुतं नाथ परं ब्रह्मनिरूपणम्।
इदानीं श्रोतुमिच्छामि क्षितौ सृष्टिर्यथा भवेत् ॥१॥

श्रीशिव उवाच

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि यथा सृष्टिः प्रजायते।
सत्यलोके महाकाली महारुद्रेण सम्पुटौ ॥२॥
चणकाकारविस्तारा चन्द्रसूर्यादिरूपिका।
अनादिरूपसंयुक्ता तदंशा जीवसंज्ञकाः ॥३॥
ज्वलदग्नेर्यथा देवि स्फुरन्ति विस्फुलिङ्गकाः।
तस्याश्च्युतं परं बिन्दुर्यदा भूमौ पतत्यपि ॥४॥

श्रीचण्डिका कहती हैं—हे नाथ ! आपके अनुग्रह से परब्रह्म-निरूपण सुना। अब यह जानने की इच्छा है कि पृथ्वी पर सृष्टि कैसे होती है ?

श्रीशिव उत्तर देते हैं—हे देवी ! जैसे सृष्टि होती है, वह कहता हूँ, तुम सुनो ! महारुद्र के सहित संयुक्त होकर चन्द्र-सूर्य के समान तेजःसम्पन्ना चणक के समान आकार वाली महाकाली सत्यलोक में विराजित हैं। उनका ही अंश अनादि जीव है। जैसे प्रज्वलित अग्नि से स्फुलिंग निर्गत होते रहते हैं, उसी प्रकार महाकाली से परबिन्दु च्युत होकर पृथ्वी पर पतित होता है। ॥१-४॥

तदैव सहसा देवि शक्त्या युक्तो भवत्यपि।
स्थावरादिषु कीटेषु पशुपक्षिषु शैलजे।
चतुरशीतिलक्षं वै जन्म चाप्नोति सोऽव्ययः ॥५॥

हे देवी ! वे अव्यय पुरुष शक्तियुक्त होते हैं और स्थावरादि कीट, पशु-पक्षी प्रभृति ८४ लक्ष जन्म को प्राप्त होते हैं ॥५॥

ततो लभेत् परेशानि मानुष्यां दुर्लभां तनुम् ।
यतो मानुषदेहस्तु धर्माधर्माधिपश्च सः ॥६॥

हे परमेशानी ! उसके पश्चात् दुर्लभ मनुष्य शरीर प्राप्त होता है, वे इस मनुष्य देह को प्राप्त करके धर्म-अधर्म के अधिपति हो जाते हैं ॥६॥

ततोऽपि लभते जन्म पुनर्मृत्युमवाप्नुयात् ।
जायन्ते च म्रियन्ते च कर्मपाशनियन्त्रिताः ।
चतुरशीतिसहस्रेषु नानायोनीषु शैलजे ॥७॥

हे पर्वतनन्दिनी ! जन्म के पश्चात् मृत्यु होती है। जीवगण कर्मपाश में आबद्ध होकर विभिन्न योनियों में पुनः पुनः जन्म-मृत्यु का भोग करते रहते हैं ॥७॥

श्रीचण्डिकोवाच

कथं वा लभते जन्म कथं मृत्युर्भवेत् प्रभो ।
तत्प्रकारं महादेव श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः ॥८॥

श्रीशंकर उवाच

इह यत् क्रियते कर्म तत् परत्रोपभुज्यते ।
जीवस्तृणजलौकेव देहाद् देहान्तरं व्रजेत् ॥९॥
सम्प्राप्य चोत्तमं देहं देहं त्यजति पूर्वकम् ।
इति श्रुत्वा च सा देवी पप्रच्छ परमेश्वरम् ॥१०॥

श्रीचण्डिकोवाच

प्राप्तञ्चोत्तरदेहस्तु पिण्डदानादिकं कथम् ॥११॥

श्रीचण्डिका कहती हैं—हे महादेव ! किस प्रकार से जन्म तथा मृत्यु होती है, उसे कहिये, हे प्रभो ! मैं इसे यथार्थ रूप में आप से सुनना चाहती हूँ।

श्रीशंकर कहते हैं—इस लोक में जो कर्म किया जाता है, परलोक में उसका ही फलभोग प्राप्त होता है। जीव एक देह से अन्य देह में गमन करता है। उत्तम देह प्राप्त करके पूर्वदेह का त्याग करता रहता है। यह सुनकर देवी पुनः परमेश्वर से पूछती हैं।

श्रीचण्डिका कहती हैं—हे प्रभो ! अन्य देह प्राप्त हो जाने पर पिण्ड-दान आदि से क्या होगा ? ॥८-११॥

श्रीशिव उवाच

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि मायादेहं तदैव हि ।
मायादेहं परेशानि वायुरूपेण चान्यथा ॥१२॥

वायुरूपो यतो देह आकाशस्थो निराश्रयः ।
ततश्च पिण्डदानेन वायुः स्थिरतरो भवेत् ॥१३॥

शिव कहते हैं—हे देवि ! मैं मायादेह की स्थिति कहता हूँ। तुम सुनो। हे परमेशानी ! पूर्व मायादेह के त्याग के साथ-साथ अन्य एक मायादेह उत्पन्न हो जाती है। जब वायुरूप देह आकाश में निराश्रय-रूपेण अवस्थित रहती है, तब पिण्डदान के द्वारा उस वायुरूपता में स्थिरता आ जाती है ॥१२-१३॥

प्रथमे मस्तकं देवि जायते च क्रमावधि ।
ततो यमपुरे गत्वा धर्माधर्मादिकञ्च यत् ॥१४॥

तद्भुक्त्वा चापरे किञ्चिद् यदा कर्म न विद्यते ।
यदाज्ञया तदा जीवः प्रययौ ब्रह्मशासनम् ॥१५॥

प्रथम पिण्डदान से मस्तक का तथा क्रमशः अन्य अवयवों का निर्माण होता है। तदनन्तर यमपुरी में जाकर धर्म तथा अधर्मजनित फलभोग करके, जब अन्य जन्म का कोई फल शेष नहीं रह जाता, तब जीव ब्रह्मशासन प्राप्त करता है ॥१४-१५॥

तस्मात् कर्मानुसारेण यदि स्याद् दुर्लभां तनुर् ।
महाविद्यां भाग्यवशाद् यदि प्राप्नोति सद्गुरुम् ॥१६॥

तत्त्वज्ञानं महेशानि यदि भाग्यवशाल्लभेत् ॥
तदैव परमं मोक्षं यावद् ब्रह्माण्डं तिष्ठति ॥१७॥

तदन्तर भाग्य से दुर्लभ मनुष्य देह की प्राप्ति होती है और सद्गुरु की प्राप्ति द्वारा महाविद्या प्राप्त होती है। हे शिवे ! यदि भाग्य से तत्त्वलाभ होता है, उस स्थिति में जब तक ब्रह्माण्ड है, तब तक के लिये परम मोक्ष की प्राप्ति होती है ॥ १६-१७ ॥

ब्राह्मणस्य महामोक्षं सायुज्यं क्षत्रियस्य च ।
सारूप्यञ्चोरुजातस्य शूद्रस्य सहलौकिकम् ॥१८॥
महाविद्याप्रसादेन पुनरागमनं नहि ।
बृहद्ब्रह्माण्डनाशे तु सर्वमोक्षं यदा शिवे ।
तदा सर्वस्य निर्व्वाणं भवत्येव न संशयः ॥१९॥

महाविद्या की कृपा से ब्राह्मण को महामोक्ष, क्षत्रिय को सायुज्य, वैश्य को सारूप्य तथा शूद्र को सालोक्य प्राप्त होता है और पुनरागमन नहीं रह जाता। हे शिवे ! बृहद् ब्रह्माण्ड का नाश हो जाने पर जब सभी मोक्ष-प्राप्ति करते हैं, तब सबको निर्वाण प्राप्त होता है, इसमें कोई सन्देह नहीं है ॥ १८-१९ ॥

श्रीचण्डिकोवाच

बृहद्ब्रह्माण्डबाह्ये तु किं पुनः परमेश्वर ।
तत् सर्वं श्रोतुमिच्छामि यदि स्नेहोऽस्ति मां प्रति ॥२०॥

श्रीचण्डिका कहती हैं—हे परमेश्वर ! यदि मेरे प्रति स्नेह है, उस स्थिति में यह कहें कि बृहद् ब्रह्माण्ड के बाहर क्या है ? मैं इसे सुनना चाहती हूँ ॥ २० ॥

श्रीशिव उवाच

ब्रह्माण्डस्य बाह्यदेहे ब्रह्माण्डा बहवः स्थिताः ।
अनन्तस्य प्रमाणन्तु किं वक्तुं शक्यते मया ।
स एव निर्म्मितं सर्वं सैव सर्वं महेश्वरि ॥२१॥

॥ इति श्रीमहामोक्षतन्त्रे सर्वतन्त्रोत्तमोत्तमे श्रीशंकरचण्डिकासंवादे द्वितीयः पटलः ॥

श्रीशिव कहते हैं—ब्रह्माण्ड के बाहर की ओर भी अनेक ब्रह्माण्ड स्थित हैं। हे महेश्वरी ! अनन्त के प्रमाण के सम्बन्ध में मैं कैसे कहूँ ? वे ही समस्त रूप धारण करते हैं। वे ही सब कुछ हैं ॥ २१ ॥

॥सर्वतन्त्रोत्तमोत्तम महामोक्ष तन्त्र का श्रीशंकर–चण्डिका-संवाद रूप द्वितीय पटल समाप्त ॥

अथ तृतीयः पटलः

श्रीशिव उवाच

प्रकृत्या जायते पुंसा प्रकृत्या सृज्यते जगत् ।
तोयात्तु बुद्बुदं देवि यथा तोये विलीयते ।
प्रकृत्या जायते सर्वं पुनस्तस्यां प्रलीयते ॥१॥
तस्मात् प्रकृतियोगेन जायते नान्यथा क्वचित् ।
ब्रह्मा विष्णुः शिवो देवि प्रकृत्या जायते ध्रुवम् ।
तथा प्रलयकाले तु प्रकृत्या लुप्यते पुनः ॥२॥
शाक्ता एव द्विजाः सर्वे न शैवा न च वैष्णवाः ।
उपासन्ते यतो देवीं गायत्रीं परमाक्षरीम् ॥३॥
गायत्रीं शृणु चार्वङ्गि चतुर्वेदप्रपूजिताम् ।
वेदमातेति विख्यातां त्रिवर्णफलदायिनीम् ॥४॥

शिव कहते हैं—पुरुष के सहयोग से प्रकृति से जन्म होता है और प्रकृति से ही जगत् की सृष्टि होती है। जैसे जल से बुलबुले उत्पन्न

होकर जल में ही विलीन हो जाते हैं, उसी प्रकार प्रकृति से सब कुछ उत्पन्न होकर पुनः प्रकृति में ही लीन हो जाता है।

अतः प्रकृतियोग से ही उत्पत्ति होती है। प्रकृति योग के अभाव में कुछ भी उत्पन्न नहीं हो सकता। ब्रह्मा, विष्णु, शिव भी प्रकृति से ही उत्पन्न होते हैं। यह निश्चित है। वे प्रलयकाल में प्रकृति में ही प्रविलीन हो जाते हैं।

शाक्तगण ही द्विज हैं। शैव अथवा वैष्णवगण द्विज नहीं हैं। शाक्त गण ही परमाक्षरा गायत्री की उपासना करते हैं। हे सुन्दर अंगोंवाली ! वेदमाता नाम से विख्याता, धर्म-अर्थ-कामप्रदायिनी, चारों वेदों में प्रपूजिता गायत्री के स्वरूप को सुनो ॥ १-४ ॥

हालाहलं समुद्धृत्य नाभ्यक्षरं समुद्धरेत् ।
वामकर्णसमायुक्तं पुनर्नाभिं समुद्धरेत् ॥५॥
वर्णयुक्तं मूर्ध्नि रेफं ततश्च सुरवन्दिते ।
वारुणं रसनायुक्तं चन्द्रबीजं ततः परम् ॥६॥

हालाहल (ॐ), नाभ्यक्षर (भ), वामकर्ण (ऊ), नाभि (भ), कर्ण-युक्त (उ), मूर्ध्नि रेफं—अर्थात् ऊपर रेफ रहे। वारुणं—व, रसना —:, चन्द्रबीज—स, लान्त—व, सर्गयुक्त— : ॥५-६॥

लान्तयुक्तं सर्गयुतं चैवं व्याहृतिमुद्धरेत् ।
तत्पदञ्च समुद्धृत्य सवितुस्तदनन्तरम् ॥७॥
वरेण्यमिति चोच्चार्य भर्गो देवस्य धीमहि ।
धियो यो नः प्रचोदयात् प्रणवं तदनन्तरम् ॥८॥

ॐ भ् + ऊ = भू, भ + उ (र) = भुं, व + : = वः, स् + वः = स्वः इससे ॐ भूर्भुवः स्वः रूप से व्याहृति का गठन हो जाता है। इसके पश्चात् तत् सवितुः वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात् का योग होता है। इसमें ॐकार अन्त में पुनः युक्त होगा। समस्त के योग से निम्नलिखित गायत्री प्रकाशित होती है—ॐ भूर्भुवः स्वः तत्स-वितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात् ॐ ॥७-८॥

इति जप्त्वा महेशानि साक्षान्नारायणो भवेत् ।
धिनयोर्मध्यभागे च यकारद्वयमेव च ॥९॥
अत एव महादेवि अनन्तश्रुतिरेव च ।
इति जप्त्वा महेशानि मुक्तो भवति तत्क्षणात् ॥१०॥

हे महेशानी ! साधक इस गायत्रीमंत्र का जप करके साक्षात् नारायण रूप हो जाते हैं। 'धि' तथा 'न'कार के मध्य में दो यकार हैं। अतः हे महादेवी ! यह मन्त्र अनन्त श्रुति स्वरूप कहा गया है। इसका जप तत्क्षण मुक्ति प्रदान करता है ॥९-१०॥

अन्त्ययकारयोः स्थाने जकार इति यः पठेत् ।
स चाण्डाल इति ख्यातो ब्रह्महत्या दिने दिने ॥११॥

अन्त्य यकार के स्थान पर जो ज का पाठ करते हैं, वे साक्षात् चाण्डाल हो जाते हैं और उन्हें ब्रह्महत्याजनित पातक लगता है ॥११॥

अत एव महेशानि तव स्नेहात् प्रकाशितम् ।
सावित्री परमा विद्या त्रैलोक्येषु सुदुर्लभा ॥१२॥

हे महेशानी ! मैंने इसे तुम्हारे स्नेह के कारण प्रकाशित किया है। अन्यथा यह परम विद्या त्रलोक्य में दुर्लभ विद्या है ॥१२॥

अस्या ग्रहणमात्रेण भूब्रह्मा नात्र संशयः ॥१३॥

इसके ग्रहण मात्र से पृथ्वी पर ब्रह्मत्व प्राप्त होता है। यह निःसंदिग्ध है ॥ १३ ॥

षडङ्गन्यासमन्त्रं यत्तच्छृणुष्व प्रियंवदे ।
प्रणवद्वयञ्च हृत्पद्मे भूकारं शीर्षदेशके ॥१४॥
भुवः शिखायां स्वःकारं कवचे तु न्यसेत् सुधीः ।
नेत्रद्वयोर्भूर्भुवःस्वः स्वःकारं करयुग्मके ।
नमः स्वाहा वषट् कुर्यात् (कूर्चं) (हुं चं) वौषट् फट् क्रमतो न्यसेत् ॥१५॥

हे प्रियंवदे ! इस मंत्र को षडंग मन्त्र भी कहा जाता है। हृदयादि

न्यास में ॐ ॐ इत्यादि तथा ॐ नमः न्यास करे। अर्थात् हृदय में ॐ ॐ नमः। मस्तक में भूः स्वाहा, शिखा में भुवः वषट्, कवच में स्वः हुँ। नेत्रद्वय में भूर्भुवः स्वः बौषट्। करद्वय में स्वःफट्, इसी प्रकार न्यास करे ॥ १४-१५ ॥

ध्यानं श्रृणु वरारोहे यथा ध्यात्वा यजेन्नरः।
श्वेतवर्णा समुद्दिष्टा कौषेयवसना तथा ॥१६॥
श्वेतैर्विलेपनैः पुष्पैरलङ्कारैश्च भूषिता।
आदित्यमण्डलान्तःस्था ब्रह्मलोकगतान्तरा।
अक्षसूत्रधरा देवी पद्मासनगता तथा ॥ १७॥

हे वरारोहे ! मानव जिस प्रकर ध्यान द्वारा पूजा करते हैं, उसे श्रवण करो। देवी श्वेतवर्णी हैं। वे पट्टवस्त्र से युक्त, श्वेत विलेपन, श्वेत अलंकार से अलंकृता, सूर्यमण्डलमध्य में स्थिता, ब्रह्मलोक में अवस्थिता, अक्षसूत्रधारिणी तथा पद्मासनासीना हैं ॥ १६-१७ ॥

ॐ तेजोऽसि शुक्रमस्यमृतमसि धामनामासि।
प्रियं देवानामनाधृष्टं देवयजनमसि ॥१८॥

वे तेजःस्वरूपा, निर्मलवीर्यरूपा, अमृतस्वरूपिणी, सबकी आश्रय, प्रिया, अनभिभवनीया, देवपूजा की आधार रूपा हैं ॥१८॥

गायत्री चैकपदी द्विपदी त्रिपदी चतुष्पद्यपि।
नमस्ते तुरीयाय दर्शनाय पदाय परोरजसे ॥१९॥

गायत्री कभी एकपदी, कभी द्विपदी, कभी-कभी चतुष्पदी होती हैं। ये तुरीय स्वरूपा, एकमात्र दर्शनयोग्या, एकमात्र श्रेष्ठ स्थान तथा गुणातीत हैं। इन्हें नमस्कार है ॥ १९ ॥

एवं यजेत् तां देवीं गायत्रीं परमाक्षरीम्।
पुनर्ध्यात्वा यन्त्रपीठे पुष्पं दद्याद्वरानने ॥२०॥
आदौ त्रिकोणं विन्यस्य षट्कोणं तद्बहिर्न्यसेत्।

वृत्तं चाष्टदलं पद्मं तदबहिश्चतुरस्रकम्।
चतुर्द्वारसमायुक्तं सावित्रीयन्त्रमीरितम् ॥२१॥

हे वरानने ! परमाक्षरी गायत्री देवी का इस प्रकार पूजन करे। तत्पश्चात् ध्यान करके यन्त्रपीठ पर पुष्प अर्पित करे।

प्रथमतः त्रिकोण, उसके बाहर षट्कोण, तदनन्तर वृत्त, तत्पश्चात् अष्टदल पद्म, तदनन्तर चतुष्कोण, सर्वान्त में चतुर्द्वार (भूपुर) अंकित करे। यह सावित्री यन्त्र है ॥२०-२१॥

जीवन्यासादिकं कृत्वा पूजयेत्तां त्रिवर्गदाम्।
हालाहलादिकं मन्त्रं समस्तं परमेश्वरि ॥२२॥
समुच्चार्य वदेत् पाद्यं सावित्रीं ङेयुतां ततः।
त्यागात्मकं पाद्यं पश्चाद् यथाविभवविस्तरैः ॥२३॥
द्रव्याभावे वरारोहे पाद्याद्यैरुदकात्मकैः।
पूजयित्वा जपेद् देवीं गायत्रीं परमाक्षरीम् ॥२४॥

जीवन्यासादि करके त्रिवर्गदायिनी गायत्री की पूजा करे। हे परमेश्वरी! सर्वप्रथम गायत्री मन्त्र का उच्चारण करके सावित्री को पाद्यादि दे, यथा ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात् ॐ एतत् पाद्यं सावित्र्यै नमः। इस प्रकार से स्वसामर्थ्य से द्रव्य सामग्री के द्वारा देवी का पूजन करे। अन्यथा ब्राह्मणत्व से च्युति हो जाती है। हे वरारोहे ! द्रव्य के अभाव में जल से ही पाद्यादि पूजा करके परमाक्षरी गायत्री का जप करे ॥२१-२४॥

दशभिर्जन्मजनितं शतेन च पुराकृतम्।
त्रियुगन्तु सहस्रेण गायत्री हन्ति पातकम् ॥२५॥

गायत्री के १० जप से इहजन्मजनित पाप नष्ट हो जाते हैं। शत

जप से पूर्वजन्मार्जित पाप तथा सहस्र जप द्वारा त्रियुग कृत पाप नष्ट होते हैं ॥ २५ ॥

महेशवदनोत्पन्ना विष्णोर्हृदयसंस्थिता ।
ब्रह्मणा समनुज्ञाता गच्छ देवि यथेच्छया ॥२६॥

इति मन्त्रं समुच्चार्य देव्या वामकरे बुधः ।
समर्पयेदपि फलं ततः स्तोत्रादिकं पठेत् ॥२७॥

'हे देवी ! तुम महेश्वर के मुख से उद्भूता हो, विष्णु के हृदय में अवस्थान करती हो, ब्रह्मा को सम्यक् रूप से परिज्ञात हो। अब अपनी इच्छानुसार जाओ, यह उच्चारण करते हुये देवी के वामहस्त में जप समर्पण करे। तदनन्तर स्तोत्र पाठ करे ॥ २६-२७ ॥

विधिवल्लक्षजापेन पुरश्चरणमीरितम् ।
तद्दशांशं हुनेत् पश्चात् पुरश्चरणसिद्धये ॥२८॥
होमस्य तद्दशांशेन तर्पणं तदनन्तरम् ।
तर्पणस्य दशांशेन अभिषेकं ततः परम् ॥२९॥
अभिषेकं दशांशैकं कुर्याद् ब्राह्मणभोजनम् ।
ततः सिद्धा भवेद् देवी त्रिवर्गफलसाधिनी ।
माहात्म्यञ्चास्य मन्त्रस्य चतुर्वदनेन भाषितम् ॥३०॥

विधि के अनुसार १ लाख जप से पुरश्चरण होता है। तदनन्तर सिद्धि के लिये जप के दशांश का होम, होम के दशांश का तर्पण, तर्पण के दशांश को अभिषेक, अभिषेक के दशांश का ब्राह्मण-भोजन कराये। इससे त्रिवर्गफलसाधिनी गायत्री सिद्ध हो जाती है। चारों वेदों में इस गायत्री मन्त्र का माहात्म्य कीर्तित है ॥ २८-३० ॥

आपोमार्जनमन्त्रस्य प्रकारं शृणु यत्नतः ।
भूमौ शिरसि चाकाशे आकाशे भुवि मस्तके ॥३१॥

मूर्ध्नि भूमौ तथाकाशे यजुर्वेदे सुरेश्वरि ।
सामाथर्वे त्विदं देवी ऋग्वेदे शृणु शैलजे ॥३२॥

हे सुरेश्वरी ! आपोमार्जन मंत्र कहता हूँ। सुनो ! यजुर्वेद में कहा गया है कि भूमि में, मस्तक में, मस्तक से आकाश में, आकाश से भूमि में, भूमि से मस्तक में, मस्तक से भूमि में, भूमि से मस्तक में, मस्तक से भूमि में एवं आकाश में इस क्रम से करे। सामवेद तथा अथर्ववेद में भी यही कहा गया है। हे पर्वतनन्दिनी ! अब ऋग्वेद में जो कहा गया है, उसे सुनो ॥ ३१-३२ ॥

शून्ये शिरसि चावन्यां भूमौ शून्ये शिरे तथा ।
भूमौ शून्ये तथा मूर्ध्नि चापोमार्जनमाचरेत् ॥३३॥
आपोहिष्ठेति मन्त्रेण अष्टाक्षरपदेन तु ।
मार्जनं तत्क्रमेणैव सर्वपापप्रणाशनम् ॥३४॥
व्यतिक्रमेण चार्व्वङ्गी ब्रह्महत्या पदे पदे ।
अत एव क्रमं सर्वं तव स्नेहात् प्रकाशितम् ।
स्तुतिञ्च कवचं देवि पठित्वा प्रणमेत् सुधीः ॥३५॥

आकाश, मस्तक, भूमि, भूमि-आकाश-मस्तक, भूमि-आकाश एवं मस्तक इस क्रम से आपोमार्जन करे। 'आपोहिष्ठा' मन्त्र द्वारा तथा अष्टाक्षर पद से उक्त क्रम द्वारा मार्जन करे। इससे सारे पाप नष्ट हो जाते हैं।

हे सुन्दर अवयवों वाली ! इसका व्यतिक्रम करने से प्रत्येक पद पर ब्रह्महत्या होती है। तुम्हारे स्नेह के कारण यह क्रम प्रकाशित किया गया है। हे देवी ! सुधी व्यक्ति स्तव तथा कवच पाठ करके प्रणाम करे ॥ ३३-३५ ॥

श्रीदेव्युवाच

तुरीयधामे यो देवः परमात्मा स एव हि ।
शिरःपद्मे स्थिते बाह्ये नमस्कारः कथं भवेत् ॥३६॥

श्रीशिव उवाच

शिरःपद्मे महादेवस्तथैव परमो गुरुः ।
तत्समो नास्ति देवेशि पूज्यो हि भुवनत्रये ॥३७॥

देवी कहती हैं—तुरीय धाम में जो स्थित हैं, वे परमात्मा ... शि
पद्म में साधक द्वारा बाह्य नमस्कार कैसे संभव होगा ?

शिव कहते हैं—शिरःस्थित महापद्म में महादेव रूप परमगु
अवस्थित हैं। हे देवेशी ! त्रिभुवन में उनके समान पूज्य कुछ भी
नहीं है ॥ ३६-३७ ॥

तद्रूपं चिन्तयेन्मन्त्री बाह्ये गुरुचतुष्टयम् ।
तदंशाभावसम्भूता ये चान्ये गुरवो जनाः ॥३८॥
तथैव ब्राह्मणाः सर्वे चांशावतारसंस्थिताः ।
यदैव बाह्ये चेतांश्च प्रत्यक्षे भावयेत्तदा ॥३९॥
सहस्रारे महापद्मे तदा चिन्तां विवर्जयेत् ।
प्रत्यक्षे दर्शने देवि बाह्य तद्ब्रह्म चिन्तयेत् ॥४०॥

इस प्रकार मंत्रवान् साधक बाह्य गुरु, परम गुरु, परापर गुरु तथा
परमेष्ठी गुरु, इन गुरु चतुष्टय का चिन्तन करे। उनके अंश स्वरू
(भावसम्भूत) अन्यान्य गुरुजनगण की तथा अंशावतार रूप ब्राह्मण
की भी चिन्तना करे। इसके पश्चात् सहस्रदल पद्म में चिन्तनरहित ह
जाय। हे देवी ! बाहर प्रत्यक्ष ब्रह्मरूप गुरु एवं ब्राह्मण का चिन्त
करे ॥ ४० ॥

नमस्कारादिकं देवि कुर्यात् साधकसत्तमः ।
एभ्यो दर्शनमात्रेण नमस्कारादिकं चरेत् ।
न कुर्याद् यदि मोहेन स भवेदापदाश्रयः ॥४१॥

हे देवी ! दर्शन मात्र ही इसका उद्देश्य है। अर्थात् इनका दर्श
होते ही नमस्कार करे। मोहवशात् नमस्कार न करने से महान् विपत्ति
आ जाती है।

ब्राह्मणादीन् समालोक्य ब्रह्मचारी यतित्रयम् ।
दृष्टिमात्रेण गिरिजे प्रणमेद्दण्डवद् भुवि ॥४२॥
महापातकयुक्तोऽपि मुक्तो भवति नान्यथा ।
न कुर्याद् यदि मोहेन महापातकवान् भवेत् ॥४३॥

रक्तवस्त्रं समालोक्य तथा भस्माङ्गभूषितम् ।
दण्डहस्तं त्रिशूलञ्च दृष्ट्वा प्रदक्षिणत्रयम् ।
प्रकुर्यात् साधकश्रेष्ठश्चान्यथा पातकी भवेत् ॥४४॥

॥ इति श्रीमहामोक्षतंत्रे सर्वतन्त्रोत्तमोत्तमे श्रीशंकर-चण्डिकासंवादे तृतीयः पटलः ॥

हे गिरिनन्दिनी ! ब्रह्मचारी ब्राह्मणों को देखकर तथा यतित्रय को देखकर भूमि में दण्डवत् करे। महापातकी भी यह करके पाप-मुक्त हो जाता है। इसमें सन्देह न करे। प्रणाम न करने से महान् पाप लगता है। साधक रक्त वस्त्र पहनने वाले, भस्म लगाये, दण्डधारी, त्रिशूलधारी को देखकर तीन प्रदक्षिणा करे न करने पर पाप लगता है ॥ ४२-४४ ॥

॥ सर्वतन्त्रोत्तमोत्तम महामोक्ष तंत्र के श्रीशंकर चण्डिका संवाद का तृतीय पटल समाप्त ॥

❀

अथ चतुर्थः पटलः

श्रीचण्डिकोवाच

संन्यासः कीदृशो नाथ अवधूतश्च कीदृशः ।
कीदृशो वा ब्रह्मचारी गृहस्थो वाथ कीदृशः ॥१॥

श्रीशिव उवाच

दिव्यप्रकाशिकीं मूर्त्ति चिन्तयेद् दण्डधारिणः ।
वीरस्य मूर्त्ति देवेशि सदा भस्माङ्गभूषणाम् ॥२॥
कौलिकस्य गृहस्थस्य मूर्त्ति तद्ब्रह्मचारिणः ॥३॥

गृहस्थस्य दिव्यमूर्त्तिं चन्दनादिविभूषिताम् ।
सर्वेषां पितृरूपोऽसौ गृहस्थः साधुरूपकः ॥४॥
शृणु देवि प्रवक्ष्यामि बृहद्ब्रह्माण्डलक्षणम् ।
मेरुपर्वतस्तन्मध्ये सर्वदेवाश्रयः प्रिये ॥५॥

श्रीचण्डिका कहती हैं—हे नाथ ! संन्यास क्या है, अवधूत, ब्रह्मचारी तथा गृहस्थ कैसे होते हैं ?

श्रीशिव कहते हैं— साधक दण्डधारी, संन्यासी की दिव्यमूर्ति का चिन्तन करे। हे देवेशी ! वीर अवधूत की भस्माङ्गभूषित मूर्ति का चिन्तन करे। कौलिक ब्रह्मचारी तथा गृहस्थ की मूर्ति का भी चिन्तन करे। गृहस्थ चन्दनादि विभूषित दिव्य मूर्ति है। साधु रूपी गृहस्थ सभी आश्रम एवं वर्ण के पितास्वरूप होते हैं। हे देवी ! सुनो ! मैं अब बृहद् ब्रह्माण्ड का स्वरूप कहता हूँ। उसके मध्य में समस्त देवताओं का आश्रय सुमेरु पर्वत अवस्थित है ॥ १-५ ॥

महाधीरा नदी तत्र मध्यदेशे सदा स्थिता ।
सुमेरोश्चोर्ध्वदेशे तु सत्यलोकं वरानने ॥६॥
अधोभागे महेशानि प्रतिष्ठति रसातलम् ।
एवंक्रमे मेरुमध्ये भुवनानि चतुर्दश ।
पातालसप्तकश्चोर्ध्वे ब्रह्मपद्मं महेश्वरी ॥७॥

अधोवक्त्रं हि तत् पद्मं धरामध्ये चतुर्दलम् ।
पद्ममध्ये बीजकोषे क्षितिचक्रं मनोहरम् ॥८॥

उस पर्वत के मध्य में मध्यधीरा नदी प्रवाहित रहती है। हे वरानने ! सुमेरु के ऊर्ध्व में सत्यलोक अवस्थित है। हे महेशानी ! निम्न में रसातल विद्यमान है। सुमेरु के मध्यभाग में चतुर्दश भुवन तथा सप्तपाताल सुशोभित हैं। हे महेश्वरी ! उससे ऊर्ध्व में ब्रह्मपद्म विद्यमान है। वह चतुर्दल पद्म है और निम्नमुखी धरा में विराजित है। पद्म के मध्य में मनोहर क्षितिचक्र शोभायमान है ॥ ६-८ ॥

वलयाकाररूपेण समुद्राः सप्त संस्थिताः ।
जम्बूद्वीपं मध्यदेशे चतुष्कोणं मनोहरम् ॥९॥

यहाँ वलयाकार सप्त समुद्र सुशोभित हैं। मध्यभाग में मनोरम चतुष्कोणाकृति जम्बूद्वीप अवस्थित है ॥ ९ ॥

त्रिकोणं मदनागारं कन्दर्पश्चाधिदेवता ।
ऐन्द्ररूपं हि लं बीजं गजेन्द्रवाहनं शिवे ॥१०॥
त्रिकोणे मदनागारे लिङ्गरूपी महेश्वरः ।
मायाशक्तिर्महेशानि भुजगाकाररूपिणी ॥११॥
तयैव वेष्टितं लिङ्गं सार्द्धत्रिवलयाकृतिः ।
लिङ्गच्छिद्रं तद्वक्त्रेण समाच्छाद्य स्थिता सदा ।
ऐन्द्रबीजं वरारोहे लिङ्गस्य वामदेशके ॥१२॥

मदन-गृह-स्वरूप त्रिकोण तथा उसके गृहपति कामदेव स्थित हैं। हे शिवे ! उस स्थान में इन्द्र स्वरूप लं बीज तथा गजेन्द्रवाहन अवस्थित हैं। हे महेशानी ! मदनालय त्रिकोण के मध्य में लिंगरूपी महेश्वर तथा सर्परूपिणी मायाशक्ति स्थित रहती है। हे वरारोहे ! सार्द्धत्रिवलयाकारा मायाशक्ति लिङ्गरूपी महेश्वर को आवेष्टित करके वर्त्तमान है और उनके मुख के द्वारा लिंगमुख आच्छादित है। हे देवी ! लिंगरूपी महेश्वर के वामभाग में इन्द्रबीज (लं) शोभित हो रहा है।

सुसिद्धं ब्रह्मसदनं नादोपरि सुसुन्दरम् ।
तत्रैव निवसेद् ब्रह्मा सृष्टिकर्त्ता प्रजापतिः ॥१३॥
वामभागे च सावित्री वेदमाता सुरेश्वरी ।
तस्या प्रसादमासाद्य सृष्टिं वितनुते सदा ॥१४॥
यद्रूपं ब्रह्मसदनं लक्षयोजनविस्तृतम् ।
तत्सर्वं परमेशानि ऋग्वेदाख्यं मयोदितम् ॥१५॥

नाद के ऊपर अत्यन्त सुन्दर सुसिद्ध ब्रह्मभवन शोभित है। वहाँ सृष्टिकर्त्ता प्रजापति ब्रह्मा रहते हैं। उनके वाम भाग में देवताओं की

अधीश्वरी सावित्री शोभित होती रहती हैं। ब्रह्मा उनके ही प्रसाद से सृष्टि रचना करते रहते हैं। हे परमेशानी! लक्षयोजन विस्तृत ब्रह्मसदन जैसे अवस्थित है, उस सबको मैं ऋग्वेद के नाम से अभिहित कर चुका हूँ ।।१३-१५।।

त्रिकोणे परमेशानि द्विषष्टितमकोष्ठकाः ।
तदेव पर्वतं प्रोक्तं सर्वदेवाग्रजे हि तत् ।।१६।।
त्रिकोणमध्ये तद्वाह्ये पश्चात् पूर्वं वरानने ।
स्थावरं पर्वतं पश्य कीटं पशुमनुत्तमम् ।
खगं नरादिकं देवि नास्ति किं पृथिवीतले ।।१७।।

हे परमेशानी! त्रिकोण के मध्य में छः कोष्ठ रहते हैं। वे ही सर्वदेवाग्रज पर्वतरूपेण अभिहित होते हैं। हे वरानने! इस त्रिकोण के मध्य में, बाहर, पश्चात् में तथा पूर्व में स्थावर, पर्वत, कीट, श्रेष्ठ पशु-पक्षी मनुष्यादि का दर्शन होता है। हे देवी! पृथ्वी में क्या नहीं है? ।।१६-१७।।

त्रिकोणबाह्ये गिरिजे पर्वतं बहुरूपकम् ।
नीलाचलं मन्दरञ्च पर्वतं चन्द्रशेखरम् ।।१८।।
हिमालयं सुवेलञ्च मलयं भस्मपर्वतम् ।
चतुष्कोणे वसेद् देवी एतत् सप्तकुलाचलम् ।।१९।।
एतेषां शिखराज्जातं पर्वतं बहुरूपकम् ।
नाना देवालया देवि तथैव दानवालयाः ।।२०।।
तृणगुल्मलतालक्षं नानारूपाणि तत्र वै ।
म्रियन्ते च जायन्ते च पूर्वोक्तेनैव वर्त्मना ।।२१।।

।। इति श्रीमाहमोक्षतन्त्रे सर्वतन्त्रोत्तमोत्तमे हर-गौरीसवादे योगविवरण नाम चतुर्थः पटलः ।।

हे पर्वतनन्दिनी! त्रिकोण के बाहर नाना पर्वत हैं। हे देवी! नीलाचल. मन्दर, चन्द्रशेखर, हिमालय, सुबेल, मलय तथा भस्म रूपी

सप्तकुल पर्वत चतुष्कोण मे अवस्थित हैं। हे देवी! इस पर्वत समूह के शिखर पर नाना पर्वत, देवालय, दानवालय, नाना तृण, लता, पद्म प्रभृति जन्म लेते तथा विनष्ट होते रहते हैं ।।१८-२१

।। सर्वतंत्रोत्तमोत्तम श्रीमहामोक्षतंत्रान्तर्गत हर-गौरीसंवाद का चतुर्थ पटल समाप्त ।।

अथ पञ्चमः पटलः

श्रीशिव उवाच

एतत् पद्मस्योर्ध्वदेशे भीमाख्यं पङ्कजं शुभम् ।
पत्रषट्कं तथा वृन्तं चतुर्द्वारविभूषितम् ।।१।।
पद्ममध्ये राजकोषे भुवोलोकं मनोहरम् ।
सिन्दूरसदृशं रक्तं वर्णेन शोभितं सदा ।।२।।
सिन्दूराभरक्ताभ्रेण निर्मितं चक्रपाणिना ।
तस्योर्ध्वे निवसेद् विष्णुः श्रीर्वाणी वामदक्षिणे ।।३।।
ब्रह्मणा सृज्यते लोकः पाल्यते चक्रपाणिना ।
वैकुण्ठं नाम तत् स्वर्गं नानादेवालयं हि तत् ।।४।।

श्रीशिव कहते हैं—इस पद्म के ऊर्ध्वदेश मे भीमपद्म नामक सुन्दर पद्म स्थित है। उसके छ पत्र, वृत्त तथा चार द्वार हैं। पद्म के मध्य में राजकोष में सिन्दूर के समान रक्तवर्ण मनोहर भुवलोक शोभा पाते रहते हैं। चक्रपाणि इसका सिन्दूर के समान रक्त वर्ण से निर्माण करते हैं। इसके ऊपर विष्णु का वास स्थान है। उनके वाम में लक्ष्मी तथा

दक्षिण में सरस्वती विराजित रहती हैं। ब्रह्मा सृष्टि कार्य करते हैं और विष्णु पालन करते हैं। वह स्वर्ग विष्णुलोक के नाम से प्रख्यात है। वहाँ अनेक देवालय अवस्थित हैं ॥१-४॥

वैकुण्ठस्य दक्षभागे गोलोकं सर्वमोहनम् ।
तत्रैव राधिका देवी द्विभुजो मुरलीधरः ॥५॥
नारदाद्यैर्मुनिगणैः शोभितं वेदपारगैः ।
वैकुण्ठसदृशं स्थानं नास्ति ज्ञाने च मामके ॥६॥

वैकुण्ठ के दक्षिण में सर्वमोहन गोलोक है। वहाँ राधिकादेवी तथा द्विभुजाधारी मुरलीधर सुशोभित हैं। वेदपारंगत नारदादि मुनिगण इस लोक में शोभा पाते रहते हैं। मेरे ज्ञान के अनुसार वैकुण्ठ ऐसा स्थान कहीं नहीं है ॥ ५-६॥

अत्र मध्ये तथा बाह्ये ज्योतिषं परिपश्यति ।
नानाभोगयुताः सर्वे नानारत्नेन भूषिताः ॥७॥
इन्द्राद्या देवताः सर्वा यथा सर्वं प्रशस्यति ।
तथैव भूमिगाः सर्वे तिष्ठन्ति स्तुतिहेतवे ॥८॥

यहाँ मध्य तथा बाह्य में अनेक ज्योतिष्क परिदृष्ट होता है और नाना भोगयुक्त एवं नानारत्न भूषित आत्मायें अवस्थित रहती हैं। इन्द्रादि देवतागण सब कुछ का अवलोकन करते हैं। उसी प्रकार यहाँ मर्त्यगण भी स्तव करने के लिये अवस्थान करते हैं ॥७-८॥

महासत्त्वमयं लोकं वेदबाहुविराजितम् ।
पीताम्बरं शान्तमूर्त्ति वनमालाविभूषितम् ॥९॥
एवं भक्तजनं सर्वं वैकुण्ठे चोपशोभितम् ।
विष्णुशब्दं विष्णुगानं वैष्णवं विष्णुरूपकम् ।
विष्णुगानं विना नास्ति वैकुण्ठे परमेश्वरी ॥१०॥

यह महासत्त्वमय लोक है। यहाँ सभी वैष्णव भक्त पीतवस्त्रधारी, शान्त, वनमालाभूषित, विष्णुरूप में अवस्थित तथा विष्णुशब्द एवं

विष्णुगान मे मग्न हैं। हे परमेश्वरी ! वैकुण्ठ में विष्णुगान के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है ॥९-१०॥

यद्रूपं गोलोकं धाम तद्रूपं नास्ति मामके ।
ज्ञाने वा चक्षुषि किं वा ध्यानयोगे न विद्यते ॥११॥
शुद्धसत्त्वमयं देवि नानावेदेन शोभितम् ।
तत्रैव भावि कैलासस्तत्रैव ब्रह्मणः पुरम् ॥१२॥

गोलोक के समान अन्य कोई भी स्थान मेरी दृष्टि में नहीं है। हे देवी ! यह गोलोक धाम शुद्ध सत्त्व पूर्ण तथा वेदों से सुशोभित है। वहीं पर कैलास तथा ब्रह्मलोक की सत्ता भी है ॥ ११-१२ ॥

वैकुण्ठनगरं तत्र तत्रैव राधिकालयम् ।
चन्द्रालयं हि तत्रैव कन्दर्पनिलयं प्रिये ॥१३॥
सर्वं देवालयं तत्र देवकन्यादिशोभितम् ।
मध्यदेशे गोलोकाख्यं श्रीविष्णोर्भोगमन्दिरम् ॥१४॥

हे प्रिये ! वहीं पर वैकुण्ठ नगर, राधिकालय (राधिका निवास) चन्द्र तथा सूर्य एवं कामदेव का वासस्थान है। वहीं देवकन्याओं से शोभित समस्त देवालय हैं। इसका मध्यप्रदेश गोलोक है, जो श्री विष्णु का भोगमन्दिर कहा गया है ॥ १३-१४ ॥

श्रीविष्णोस्तत्त्वरूपस्य यत्स्थानं चित्तमोहनम् ।
तस्य स्थानस्य माहात्म्यं किं मया कथ्यतेऽधुना ॥१५॥
यत्रैव सततं भाति द्विभुजो मुरलीधरः ।
निराकारो महाविष्णुः साकारोऽपि क्षणे क्षणे ॥१६॥

चित्तमोहन, तत्त्वरूपी श्रीविष्णु जिस स्थान में हैं, मैं उसका माहात्म्य कैसे कह सकता हूँ ? वहाँ द्विभुज मुरलीधर सर्वदा दीप्तमान हैं। वह महाविष्णु क्षण-क्षण में कभी साकार हैं, कभी निराकार हो जाते हैं ॥ १५-१६ ॥

यदा साकाररूपोऽसौ तदैव मुरलीधरः ।
तदा सत्त्वमयो विष्णुर्भुवनं पाति निश्चयम् ॥१७॥

वैष्णवस्य महामोक्षो यत्रैव परमेश्वरी ।
इति स्थानस्य माहात्म्यं संक्षेपेण मयोदितम् ।
विस्तारे न च शक्नोमि जन्मान्तरशतेन च ॥१८॥

जब वे साकार रूप धारण करते हैं, तब वह सत्वमय विष्णु पृथ्वी का पालन करते हैं। वैष्णवों का महामोक्ष जहाँ होता है, उस स्थान का माहात्म्य मैंने संक्षेप में कह दिया। सौ जन्मों में भी इस स्थान के माहात्म्य का विस्तृत वर्णन नहीं कर सकता ॥१७-१८॥

बीजकोषस्य बाह्ये तु वेष्टितं तोयमण्डलम् ।
प्रमाणं सुन्दरं तोयं यदा क्षीरोदसागरम् ॥१९॥
धूम्रस्य ज्योतिषाकारं कोटिचन्द्रसमद्युतिम् ।
वलयाकाररूपेण मुण्डभं तोयमण्डलम् ॥२०॥

बीजकोष से बाहर तोयमण्डल वेष्टित है। जब विस्तृत रूप से यह जल शोभित होता है, तब उसे क्षीरसागर कहते हैं। यह तोयमण्डल (जलमण्डल) धूम्र की ज्योति के समान है। यह करोड़ों चन्द्रमा के समान है। यह करोड़ों चन्द्रमा के समान द्युतिमान तथा वलयाकृति है ॥१९-२०॥

गङ्गादिसरितः सर्वास्तत्रैव भान्ति सुन्दरि ।
इन्द्रादिदेवताः सर्वाः स्तूयमाना निरन्तरम् ॥२१॥
गन्धर्वयक्षनागादि कूष्माण्डा भैरवास्तथा ।
नानासुखविशेषेण सदा चैकाग्रचेतसः ॥२२॥
विष्णुगानं प्रकुर्वन्ति स्तुतिभक्तिपरायणाः ।
वेदगानं प्रकुर्वन्ति चतुर्वक्त्रेण वेधसा ॥२३॥
मालवादि च षड्रागाः षट्त्रिंशद्रागिणी तथा ।
वेदगानेन भाषन्ते मूर्तिमन्तः सदैव हि ॥२४॥

हे सुन्दरी ! वहाँ गंगादि नदी समूह, स्तुति निरत इन्द्रादि देवतागण सर्वदा दीप्त होते रहते हैं। गन्धर्व, यक्ष, नाग, कूष्माण्ड, भैरवगण आदि सभी भक्ति-परायण होकर विष्णुस्तुति का गायन करते रहते हैं। वहाँ मालवादि षड्राग तथा ३६ रागिनियाँ मूर्त रूप से वेदगान करती रहती हैं ॥२१-२४॥

मालवेनैव रागेण सामगानं सदा प्रिये ।
मल्लारेण सदाथर्वं वसन्तेन तथा पुनः ॥२५॥
हिल्लोलेन यजुःपाठं सदा कुर्वीत वेधसा ।
कर्णाटेनैव ऋग्वेदं श्रीरागेण तथा शिवे ॥२६॥

हे प्रिये ! मालवराग में सामगान, मल्लार तथा वसन्तराग में अथर्ववेद का पाठ होता है। हे शिवे ! ब्रह्मा द्वारा प्रयुक्त हिल्लोल राग में यजुर्वेद का, कर्णाट तथा श्रीराग में ऋग्वेद का गायन सदैव होता रहता है ॥२५-२६॥

निर्दिष्टपाठमेतत्तु अनिर्दिष्टमतः परम् ।
तत्रैव रागा वर्तन्ते सहस्राणि च षोडश ।
तत्रैव भान्ति तासाञ्च सहस्राणि च षोडश ॥२७॥

मैंने निर्दिष्ट पाठ का विवरण कहा। इसके पश्चात् अनिर्दिष्ट पाठ की तो संख्या ही नहीं है। यहाँ १६००० राग तथा १६००० रागिनियाँ प्रदीप्त हैं ॥२७॥

मुरारेर्मुरलीगानाद् जायन्ते सर्वतालकाः ।
तेन तालेन रागेण सदा गायन्ति वेधसा ॥२८॥
तद्रागस्य विभागं हि कुर्वन्ति मुनयो जनाः ।
वसन्ताद्याश्च ऋतवस्तिष्ठन्ति तत्र सन्ततम् ॥२९॥

मुरारी की मुरली से समस्त तालों का उद्भव हुआ है। वह ताल तथा राग ब्रह्मलोकवासी सदा गायन करते रहते हैं। मुनियों ने उन्हीं रागों का विभाजन किया है। वहाँ वसन्तादि ऋतु समूह सदा विद्यमान रहते हैं ॥२८-२९॥

नानाऋतुप्रसूनेन भूषितो मुरलीधरः ।
तत्रैव राधिका देवी नानासुखविलासिनी ॥
वदन्ति मुरलीगानं कुरु कान्त प्रमोहनम् ॥३०॥

नाना अद्‌भुत पुष्पों से मुरलीधारी अलंकृत हैं। वहाँ नाना सुखविलासिनी राधिका देवी कहती हैं—"हे कान्त! तुम प्रमोहनकारी मुरलीगान करो।।३०।।

येन शब्देन कामस्य उत्पत्तिर्जायते सदा।
तद्रागञ्चैव तत्तालं कुरु गानं प्रयत्नतः।।३१।।
एवमानन्दसंयुक्ता महावेशविलासिनी।
वामभागे सदा भाति राधिका भक्तवत्सला।
प्रार्थनैकां प्रकुर्वीत राधिका भक्तिसंयुता।।३२।।

जिस शब्द द्वारा सर्वदा कामोत्पत्ति होती है, तुम यत्नपूर्वक उसी राग एवं स्वर-ताल के साथ गायन करो।" इस प्रकार से महावेश-विलासिनी भक्तवत्सला श्रीराधिका वामांग में सदा सुशोभित रहती हैं। राधिका भक्ति के साथ एक प्रार्थना करती हैं।।३१-३२।।

श्रीराधिकोवाच

तव भक्तियुता मर्त्यास्तथैव भक्तिसंयुताः।
गोलोकस्थं महाविष्णुं द्विभुजं मुरलीधरम्।।३३।।
सदानन्दयुतं देवं मम संगे विराजितम्।
एवं ध्यायति यो मर्त्यस्तस्योपायस्तु कीदृशः।
तद्वदस्व विशेषेण यद्यहं तव वल्लभा।।३४।।

श्रीराधिका कहती हैं—हे प्रिय! यदि मैं तुम्हारी प्रिय हूँ, उस स्थिति में कृपया यह बतलाओ कि यदि तुम्हारे भक्त (मृत्युलोकस्थ भक्त) भक्तियुक्त होकर गोलोकवासी द्विभुज महाविष्णु की तथा मेरे साथ विराजित सदानन्दमय मुरलीधारी की उपासना करें, उस स्थिति में उनकी क्या गति होगी?।।३३-३४।।

श्रीभगवानुवाच

ये यथा मां भजन्त्येव तेन मार्गेण सद्‌गतिम्।
दास्यामि शृणु चार्वङ्गि सदा त्वं भक्तवत्सला।।३५।।

आदौ राधा ततः कृष्णं जपन्ति ये च मानवाः।
तेषाञ्च सद्‌गतिञ्चात्र दास्यामि नात्र संशयः।।३६।।
गुरुणा भावमार्गेण मन्त्रमार्गेण चैव हि।
ये जना मां भजन्त्येव ते नरा मत्समाः सदा।।३७।।

श्रीभगवान् कहते हैं—हे सुन्दर अंगो वाली! तुम भक्तवत्सला हो। सुनो! जो मुझे जिस प्रकार से भजता है, मैं उसे वैसी ही गति देता हूँ। जो मानव पहले राधा तदनन्तर कृष्ण का अर्थात् राधाकृष्ण का जप करते हैं, उन्हें मैं सद्‌गति देता हूँ, इसमें सन्देह नहीं है। जो श्रेष्ठ भावमार्ग से मेरा भजन करते हैं, उन्हें मैं अपने ही समकक्ष मानता हूँ।।३५-३७।

या नारी मामभेदेन भजते पुरुषं सदा।
त्वत्समा सा सदा नारी जायते नात्र संशयः।।३८।।
भक्त्या वाप्यथवाभक्त्या जपन्ति युगलं यदि।
तव भक्त्या प्रदास्यामि सद्‌गतिं शृणु राधिके।।३९।।
सत्यं सत्यं पुनः सत्यं सत्यं सत्यं हि राधिके।
मद्‌भक्त्या नैव गच्छन्ति कदाचिद् यमसन्दिरम्।।४०।।

जो नारी मेरे साथ अभेद रूपा शक्ति की उपासना करती हैं, वे तुम्हारे समान हो जाती हैं। यह निःसंदिग्ध है।

हे राधिके! सुनो! जो भक्ति अथवा अभक्ति से राधाकृष्ण युगल नाम का जप करते हैं, तुम्हारी भक्ति के कारण वे सद्‌गति प्राप्त करते हैं।

हे राधिके! तुम्हें पुनः पुनः यह कहता हूँ कि मेरे भक्त कभी भी यमपुरी नहीं जा सकते।।३८-४०।।

इति श्रुत्वा च सा देवी राधिका प्रेमवत्सला।
चाङ्के शेते महाविष्णोः कामभावेन पीड़िता।
विष्णुलोकमिदं देवि चापरं शृणु यत्नतः।।४१।।

।। इति श्रीमहामोक्षतन्त्रे सर्वतन्त्रोत्तमोत्तमे चण्डिकाशङ्करसंवादे पंचमः पटलः।।

प्रेमवल्लभा श्रीराधिका यह श्रवण करके कामभाव से पीड़ित होकर महाविष्णु के अंक में शयन करने लगीं। हे देवी ! यह विष्णुलोक का वर्णन किया। अब अन्य तत्त्व भी सुनो ॥४१॥

॥ सर्वतन्त्रोत्तम श्रीमहामोक्षतंत्र का चण्डिका–शंकरसंवाद रूप पंचम पटल समाप्त ॥

अथ षष्ठः पटलः

श्रीशंकर उवाच

एतत् पद्मस्योर्ध्वदेशे महापद्मं सुदुर्लभम् ।
दशपत्रं नीलवर्णं सजलं व्योमरूपकम् ।
डादिफान्तैः सचन्द्रैश्च पङ्कजैश्चातिशोभनम् ॥१॥
तन्मध्ये बीजकोषे निवसति सततं वह्निबीजं सुसिद्धम् ।
बाह्ये भान्द्रैपुराख्यां नवतपननिभं स्वस्तिकं तन्त्रिभागम् ॥२॥

श्रीशंकर कहते हैं —इस पद्म के ऊर्ध्व में सुदुर्लभ महापद्म विराजित है। इस पद्म के नीलवर्ण दश पत्र हैं। उनके मध्य में व्योम(ल) जल(ऋ) अर्थात् लृ शोभित हैं। ये पत्र बिन्दुयुक्त ड से फ पर्यन्त दस वर्णयुक्त पक्ष के द्वारा मनोहर शोभायुक्त हैं। उनके मध्य बीजकोष में प्रसिद्ध वह्निबीज रं है। बाहर नव सूर्य के समान त्रिभाग स्वस्तिक है। उसमें त्रैपुर अर्थात 'ऐं' दीप्ति पा रहा है ॥१-२॥

स्वर्लोकाख्यमिदं देवी सर्वदेवैः प्रपूजितम् ।
साकारं वह्निबीजञ्च सदेवं मेघवाहनम् ॥३॥

रुद्रालयं हि तत्रैव महामोहस्य नाशनम् ।
भद्रकाली महाविद्या वामभागेन शोभिता ।
भद्रकाली महाविद्या तथा संहाररूपिणी ॥४॥

हे देवी ! समस्त देवगण द्वारा प्रपूजित स्वर्गलोक यही है। यहाँ देह (श) मेघ (ख) वाहन (य) एवं आकाश युक्त वह्निबीज (रां) विद्यमान है। यहीं महामोहनाशक रुद्रालय भी है। वामभाग में महाविद्या भद्रकाली सुशोभित हैं। यही संहाररूपिणी भी हैं ॥ ३-४ ॥

ब्रह्मणा पूज्यते लोकः पाल्यते विष्णुरूपिणा ।
परदेवो रुद्ररूपः सदा संहारकारकः ॥५॥

सर्वदा ब्रह्मा ही लोकों की सृष्टि करते हैं। विष्णु रूप से पालन करते हैं। परमदेव रुद्ररूप से संहार करते हैं ॥५॥

संहाररुद्ररूपेण भद्रकालिकया सह ।
रुद्रस्य भावनाद् देवि किं न सिद्धयति चण्डिके ॥६॥

हे चण्डिके ! संहाररुद्र तथा भद्रकालिका के साथ परमदेव रुद्र का ध्यान करने से ऐसा क्या है, जो सिद्ध नहीं हो जाता ॥६॥

यद्रूपं कथितं पूर्वं गोलोकं सर्वमोहनम् ।
तस्माद् वै सर्वतोभावे रुद्रलोकं चतुर्गुणम् ॥७॥
रुद्रलोकं महास्वर्गं गोलोकाद् वै चतुर्गुणम् ।
महामोक्षप्रदं नित्यं रुद्रं भस्माङ्गभूषणम् ॥८॥

पूर्व श्लोकों में सर्वमोहन गोलोक का वर्णन है, उसकी तुलना में रुद्रलोक चतुर्गुण है। महास्वर्ग रुद्रलोक तो गोलोक से चतुर्गुण सुन्दर है। यह महामोक्षप्रदायक नित्य भस्मांगभूषण रुद्र से विभूषित लोक है ॥७-८॥

विष्णुना पाल्यते यद्वै कालीरूपेण युज्यते ।
अतः कालीं महादेवीं सदैव मुरलीधरः ।
आराध्य बहुयत्नेन वैकुण्ठाधिपतिर्भवेत् ॥९॥

गोलोकाधिपतिर्देवि स्तुतिभक्तिपरायणः ।
कालीपादप्रसादेन स भवेल्लोकपालकः ॥१०॥
लोकानां रक्षणार्थाय सश्रीको मुरलीधरः ।
समाराध्य भद्रकालीं गोलोके निवसेत्तदा ॥११॥
प्रसादः कालिकायाश्च भुज्यते विष्णुना सदा ।
अतश्च पालको विष्णुर्महासत्त्वपरायणः ॥१२॥

॥ इति श्रीमहामोक्षतंत्रे षष्टः पटलः ॥

विष्णु भी काली रूप से युक्त होनेपर काली की कृपा से विश्व का पालन करते हैं, अतः मुरलीधर सर्वदा अनेक यत्न के साथ काली की आराधना करके वैकुण्ठाधिपति हो सके हैं। हे देवी ! गोलोकाधिपति भी स्तुति तथा भक्ति परायण होकर काली के ही अनुग्रह से लोकपालक हुये हैं। लक्ष्मी के साथ मुरलीधर लोकों की रक्षा के लिये भद्रकाली की आराधना करके गोलोक में निवास करते हैं।

विष्णु सदा सर्वदा काली के अनुग्रह का भोग करते हैं। अतः उन्हीं की कृपा से महासत्त्वपरायण विष्णु लोकों का पालन करते रहते हैं ॥९-१२॥

॥ महामोक्ष तंत्र का षष्ट पटल समाप्त ॥

अथ सप्तमः पटलः

श्रीशिव उवाच

एतत्पद्मस्योर्ध्वदेशे विमलं पद्मसुन्दरम् ।
शोभितं द्वादशै पत्रैः शोणवर्णसमन्वितम् ॥१॥
वाञ्छातिरिक्तफलं शुद्धसिन्दूरसन्निभम् ।
पद्ममध्ये बीजकोषे षट्कोणमण्डलं शुभम् ॥२॥
मण्डलस्य मध्यदेशे वायुबीजं मनोहरम् ।
सजीवं वायुबीजञ्च वेदबाहुविराजितम् ॥३॥

श्रीशिव कहते हैं—इस (पूर्वोक्त) पद्म के ऊपर द्वादशपत्रसमन्वित शोणवर्ण, विमल, सुन्दर पद्म शोभित है। वह वांछातिरिक्त फलदाता है। शुद्ध सिन्दूर के समान पद्म के मध्य में जो बीजकोष है, वह षट्कोण मंगलदायक मण्डल के समान है। मण्डलमध्य में वायुबीज यं तथा चतुष्कोण जीवयुक्त वायुबीज लं यं से युक्त होकर सुशोभित है ॥१-३॥

या विद्या भुवनेशानि त्रिषु लोकेषु पूजिता ।
ईश्वरस्य वामभागे या देवी परितिष्ठति ॥४॥
महर्लोकमिदं भद्रे पूजास्थानं सुरेश्वरि ।
तत्रैव मानसं योगं कुरुते योगवित्तमः ॥५॥
सिन्दूरारक्तं चार्वङ्गि स्फटिकैर्निर्मितं तता ।
अतश्च मानवाः सर्वे ज्योतिः सम्परिपश्यन्ति ॥६॥

जो भुवनेश्वरी विद्या हैं, वे त्रैलोक्य में पूजित हैं। वे ही ईश्वर के वामांग में स्थित हैं। हे भद्रे ! हे सुरेश्वरी ! यही पूजा का स्थान महर्लोक है। यहाँ योगीगण मानस योग करते हैं। हे सुन्दर अंगोंवाली ! यह स्थान सिन्दूर से आरक्त है। तदनन्तर स्फटिक द्वारा निर्मित है। अतः यहाँ पर मानव ज्योति का दर्शन करते हैं ॥४-६॥

सर्वावयवसंयुक्ता देवास्तिष्ठन्ति सन्ततम् ।
भूमिगाः परिपश्यन्ति चक्राकारं हि तैजसम् ॥७॥

यहाँ सकल अवयवयुक्त देवता सदा अवस्थान करते हैं। मर्त्यलोकवासी यहाँ चक्ररूप तेजसमूह देख पाते हैं ॥७॥

स्वर्लोकगामिनः सर्वे साकारं परिपश्यन्ति ।
अङ्गभेदं न पश्यन्ति स्थूलरूपनिरीक्षणम् ॥८॥

स्वर्गलोकगामी सभी को आकारयुक्त देखते हैं; किन्तु स्थूल रूप से अंगभेद नहीं कर सकते। अर्थात् उन्हें यह अनुभव होता है कि महर्लोक वाले आकारयुक्त हैं; परन्तु उनके अंगों को वे अलग-अलग नहीं देख सकते ॥८॥

यथैव भूमिगा लोकाः प्रचरन्ति महीतले ।
तथैव देवताः सर्वे स्वर्गे तिष्ठन्ति पार्वति ॥९॥

हे पार्वती ! जैसे मृत्युलोकवासी पृथ्वी में रहते हैं, उसी प्रकार देवता-गण भी स्वर्ग में वर्त्तमान रहते हैं ॥९॥

भूर्लोके निवसेद् ब्रह्मा भुवर्लोके जनार्दनः ।
स्वर्लोके निवसेच्छम्भुः सदा संहारकारकः ॥१०॥

भूर्लोक में ब्रह्मा, भुवर्लोक में जनार्दन तथा स्वर्लोक में संहारकारक शम्भु का वास है ॥१०॥

ब्रह्मादीनाञ्च ईशानः सर्वकर्त्ता च ईश्वरः ।
सर्वस्वामित्वरूपश्च सर्वकर्त्ता सुरेश्वरः ।
सृष्टिस्थितिलयादीनां कर्त्ता च परमेश्वरः ॥११॥

ब्रह्मादि देवताओं में शंकर सर्वकार्य में समर्थ हैं और सब के स्वामी हैं। वे सब के कर्त्ता तथा देवताओं के अधिपति भी हैं। वे सृष्टि-स्थिति-लय करने वाले तथा परमेश्वर हैं ॥११॥

तस्माच्छतगुणं देवि महर्लोकं सुसुन्दरम् ।
विस्तीर्णञ्च शतगुणं सर्वं शतगुणं शिवे ॥१२॥
महर्लोकस्य माहात्म्यं किं वक्तुं शक्यते मया ।
गोलोकस्य शतगुणं सर्वत्र परमेश्वरि ॥१३॥

हे देवी ! जैसे गोलोक शोभित है, उसकी अपेक्षा महर्लोक सौ गुणित सुन्दर है। हे शिवे ! गोलोक की अपेक्षा महर्लोक शतगुण विस्तृत है। वहाँ सब कुछ गोलोक की अपेक्षा सौ गुना है।

हे महेश्वरी ! महर्लोक का माहात्म्य मैं कैसे कह सकता हूँ। वहां गोलोक की तुलना में सब कुछ सौ गुणित है ॥१२-१३॥

महर्लोके वसेद् यो हि सामान्यभावतत्परः ।
तस्मादेव शतांशकः गोलोके मुरलीधरः ॥१४॥
तदाज्ञां प्राप्य सहसा सृज्यते पद्मयोनिना ।
तदाज्ञया पाति लोकान् द्विभुजो मुरलीधरः ॥१५॥

एवं हि रुद्ररूपेण संहरत्यखिलं जगत् ।
सर्वकर्त्ता यतो देवि अतः परम ईश्वरः ॥१६॥

महर्लोक में जो सामान्य रूप से निवास करते हैं, उनकी तुलना में गोलोक के मुरलीधर सौवाँ हिस्सा हैं।

ब्रह्मा तो मुरलीधर की आज्ञा से सृष्टि करते हैं—किन्तु महर्लोकवासी की आज्ञा का पालन मुरलीधर को भी करना पड़ता है। वे रुद्ररूप से अखिल जगत् का संहार करते हैं। महर्लोकवासी (शिव) ही परमेश्वर हैं ॥१४-१६॥

ईश्वरः सर्वकर्त्ता च निर्गुणस्यालयः शिवः ।
भुवनेशीं विना देवि स्पन्दितुं नैव शक्यते ॥१७॥

सर्वकर्त्ता शिव निर्गुण हैं। अतः वे भुवनेशी के बिना स्पन्दित भी नहीं हो सकते ॥१७॥

पङ्गुप्रायः सदा ईशः गमितुं नैव शक्यते ।
भुवनेशीं समाराध्य सर्वस्वामी च ईश्वरः ॥१८॥

ईश्वर निराकार हैं, अतः पंगु के समान हैं। उन्हें चलने की भी क्षमता नहीं है। वे भुवनेश्वरी का आश्रय लेकर ही सर्वव्यापी एवं ईश्वर होते हैं ॥१८॥

अत एव महेशानि सा एव मोक्षदायिनी ।
विश्वमाता च सा देवी विश्वपालनकारिणी ॥१९॥

हे महेश्वरी ! इसी कारण भुवनेश्वरी देवी ही मोक्षदायिनी हैं। वे विश्वजननी तथा विश्वपालनकर्त्री हैं ॥१९॥

मोक्षदा सर्वलोकानां मुक्तिदा विश्वमातृका ।
भुवनेशीं विना ईशः किञ्चित् कर्त्तुं न शक्यते ॥२०॥

विश्वमातृका भुवनेश्वरी ही मोक्षदायिनी, मुक्तिदायिनी हैं। भुवनेशी के बिना ईश्वर कुछ भी नहीं कर सकते ॥२०॥

अत एव हि सा देवी मोक्षदा सर्वरूपिणी।
इति ते कथितं किञ्चिद् महर्लोकस्य लक्षणम्।
समासेन परेशानि अथान्यत् शृणु सादरम् ॥२१॥

॥ इति श्रीमहामोक्षतन्त्रे सप्तमः पटलः ॥

हे देवी ! इसी कारण वह देवी सर्वस्वरूपिणी तथा मोक्षदात्री हैं। हे परमेश्वरी ! मैंने संक्षेप में महर्लोक का स्वरूप वर्णन किया है। अब अन्य विवरण को भी आदर के साथ सुनो ॥२१॥

। श्रीमहामोक्षतन्त्र सप्तम पटल समाप्त ॥

अथाष्टमः पटलः

श्रीशंकर उवाच

अस्योर्ध्वे निर्मलं पद्मं सर्वमोहनकारणम्।
षोडशैः पत्रकैर्युक्तं मोहान्धकारनाशनम् ॥१॥
धूम्रमध्ये यथा वह्निस्तथा ज्योतिर्मयः प्रिये।
पद्ममध्ये वराटे च जनलोकं सुसुन्दरम् ॥२॥

श्रीशंकर कहते हैं—उसके ऊर्ध्व में सर्वमोहनकारक षोडशपत्रयुक्त मोहरूप अन्धकारनाशक एक निर्मल पद्म है।

हे प्रिये ! धूम्र के मध्य में जैसे अग्नि है, उसी प्रकार इस पद्म के मध्य में वराट् स्थान में अतिसुन्दर जनलोक अवस्थित है ॥१-२॥

महामोहान्धशमनं तद्बाह्ये चन्द्रमण्डलम्।
देववृन्दैर्गायकैश्च मुनिभिः परिशोभितम् ॥३॥
गोलोकस्य लक्षगुणमिह स्थानं सुदुर्लभम्।
देवत्वञ्च मनोज्ञञ्च विस्तीर्णञ्च तथा पुनः ॥ ४ ॥

उसके बाहर महामोहान्धकारनाशक चन्द्रमण्डल है। वह देवता, स्तुतिगायक तथा मुनियों के द्वारा परिशोभित है।

यह स्थान गोलोक से लाखों गुणित सुदुर्लभ, देवत्वसम्पन्न, मनोज्ञ तथा विस्तीर्ण है ॥३-४॥

सर्वं लक्षगुणं देवि ! गोलोकान्नात्र संशयः।
बीजकोषे मणिद्वीपे षट्कोणयन्त्रमुत्तमम् ॥५॥
यन्त्रमध्ये च वृत्ताभं महासिंहार्द्धदेहकम्।
तस्योपरि सदा गौरी दक्षभागे सदाशिवः ॥६॥

हे देवी ! यह स्थान गोलोक से सभी बातों में लक्षगुणित है। यह तथ्य निःसंदिग्ध है। यहाँ मणिद्वीपरूप बीजकोष में उत्तम षट्कोण यंत्र विद्यमान है।

इसके मध्य में वृत्तरूप महासिंह की अर्ध देह परिदृष्ट होती है। इसके ऊपर गौरी तथा गौरी के दक्षिण भाग में सदाशिव विराजित हैं ॥५-६॥

त्रिनेत्रः पञ्चवक्त्रश्च प्रतिवक्त्रे त्रिलोचनः।
विभूतिभूषिताङ्गश्च रजताचलसादरः ॥७॥
व्याघ्रचर्मधरो देवो मणिमालाविभूषितः।
लोकानामिष्टदाता च लोकानां भयनाशनः ॥८॥

सदाशिव त्रिनेत्र तथा पञ्चानन हैं। प्रत्येक मुख में तीन नेत्र हैं। उनका अंग विभूति से विभूषित है। वे रजत-पर्वत के समान शुभ्र वर्ण हैं।

वे व्याघ्र-चर्मधारी हैं, मणिमाला से विभूषित हैं। वे अभीष्ट देने वाले तथा भयसमूह का उच्छेद करने वाले हैं ॥७-८॥

लोकानां मुक्तिजनको लोकानां ज्ञानदायकः।
आराधकस्य ब्रह्मत्वदायको विष्णुपूजितः ॥९॥

सर्वानन्दकरो देवः अर्धनारीश्वरो विभुः ।
क्वचिद् ज्योतिर्मयो देवः क्वचिदाकारवर्जितः ॥१०॥

वे लोगों के मुक्तिदाता, ज्ञानदाता हैं। वे आराधक को ब्रह्मज्ञान देते हैं तथा विष्णु के द्वारा पूजित हैं।

वे समस्त आनन्द के कर्ता, अर्धनारीश्वर तथा सर्वव्यापी हैं। कभी वे ज्योतिर्मय हैं, तो कभी आकार रहित हो जाते हैं ॥ ९-१० ॥

देवानां पूज्यरूपश्च देवानां स्वामिरूपकः ।
भक्तस्य मुक्तिदो नित्यो विष्णुत्वदायको विभुः ॥११॥
बिल्वपत्रैः पूजकस्य नित्यसायुज्यदायकः ।
गोलोकाधिपतिं कृत्वा भक्तं रक्षेत्तु यः शिवः ॥१२॥

वे देवगण के अधिपति तथा पूज्य हैं। भक्तों को मुक्ति देने वाले, नित्य सर्वव्यापी हैं और प्रसन्न होने पर विष्णुत्व प्रदान करते हैं।

गोलोकाधिपति उनके भक्त हैं। अतः वे शिव द्वारा रक्षित हैं। जो उनकी (शिव की) बिल्वपत्र से पूजा करता है, उसे नित्य सायुज्य देते हैं ॥ ११-१२ ॥

तस्य देवस्य माहात्म्यं विस्तरेण च किं प्रिये ।
या गौरी लोकमाता च शम्भोरर्धाङ्गधारिणी ॥१३॥
त्रिगुणा सा महागौरी गुणैकेन पिनाकधृक् ।
तस्याः सङ्गं समाराध्य सर्वकर्त्ता सदाशिवः ॥१४॥

॥ इति श्रीमहामोक्षतन्त्रे अष्टमः पटलः ॥

हे प्रिये ! उन देव का माहात्म्य विस्तारपूर्वक वर्णन कर सकना संभव ही नहीं है। जो लोकमाता हैं और शिव की अर्धाङ्गिनी हैं, वे ही त्रिगुणात्मिका महागौरी हैं। उनके गुणसमूह के एक सामान्य अंश को प्राप्त करके पिनाकधारी सदाशिव सर्वकर्त्ता हो जाते हैं ॥ १३-१४ ॥

॥ श्रीमहामोक्षतंत्र का अष्टम पटल समाप्त ॥

अथ नवमः पटलः

श्रीशंकर उवाच

एतत्पद्मस्योर्ध्वदेशे ज्ञानपद्मं सुदुर्लभम् ।
पत्रद्वयसमायुक्तं पूर्णचन्द्रस्य मण्डलम् ॥१॥
पद्ममध्ये बीजकोषे स्मरेच्चिन्तामणिं पुरीम् ।
तन्मध्ये नवकोणञ्च यन्त्रं परमदुर्लभम् ॥२॥
शम्भुबीजं हि तन्मध्ये साकारं हंसरूपकम् ।
हंसः परंब्रह्मरूपं साकारं शिवरूपकम् ॥३॥

श्रीशंकर कहते हैं—इस पद्म के ऊर्ध्व में पूर्णचन्द्र के समान मण्डलाकार पत्रद्वययुक्त अत्यन्त दुर्लभ ज्ञानपद्म विद्यमान है।

पद्ममध्य में जो बीजकोष है, उसमें चिन्तामणिपुरी का स्मरण करना चाहिए। उसके मध्य में नवकोणरूप अत्यन्त दुर्लभ यन्त्र अवस्थित है।

उसके मध्य में हंस रूपकी अवस्थिति है। उसमें साकाररूपी शम्भु बीज (हौं) अवस्थित है। यह हंस परब्रह्मस्वरूप है और शिवरूप ही साकाररूप कहा जाता है ॥ १-३ ॥

तारश्चक्षुर्वरारोहे निगमागमपक्षवान् ।
शिवशक्तिपदद्वन्द्वं बिन्दुत्रयविलोचनम् ॥४॥
विहारश्चास्य हंसस्य हेमपंकजपूरिते ।
एवं हंसो मणिद्वीपे तस्य क्रोडे परः शिवः ॥५॥
वामभागे सिद्धकाली सदानन्दस्वरूपिणी ।
तस्याः प्रसादमाराध्य सर्वकर्त्ता महेश्वरः ॥६॥
तपोलोकमिदं भद्रे सर्वदेवस्य दुर्लभम् ।
यत्र ब्रह्मादयो देवा ध्यानयोगं सदाभ्यसेत् ॥७॥

हे वरारोहे ! ॐकार उनका चक्षु है। निगम तथा आगम दो पंख हैं। शिव तथा शक्ति चरणद्वय हैं तथा बिन्दुत्रय ही नेत्र हैं।

स्वर्णपद्म से शोभित स्थान में यह हंस विहार करता है। इस प्रकार मणिद्वीप में यह हंस अवस्थित है। उसके क्रोड़ में परमशिव अवस्थान करते हैं।

उनके वामभाग में सदानन्दरूपिणी भद्रकाली स्थित हैं। इन सिद्धकाली का अनुग्रह प्राप्त कर लेने से ही महेश्वर में सर्वकर्तृत्व की स्थिति है।

हे भद्रे ! जहाँ ब्रह्मादि देवता सर्वदा ध्यानयोग का अभ्यास करते हैं, वह देवताओं के लिए भी दुर्लभ तपोलोक कहा गया है ॥४-७॥

मनसापि न लभ्येत योगेन तपसा न च।
तपोलोकं गोलोकस्य चतुर्लक्षगुणं शिवे ॥८॥
ब्रह्मलोकेषु ये देवा वैकुण्ठे ये सुरादयः।
शम्भुलोके वसेद् योग्यन्ते च भक्तिपरायणाः ॥९॥

हे शिवे ! मन के द्वारा, योग के द्वारा तथा तपस्या के भी द्वारा इसकी प्राप्ति नहीं होती। यह तपोलोक सभी प्रकार से गोलोक से चतुर्लक्षगुण श्रेष्ठ है। हे शिवे ! ब्रह्मलोक, वैकुण्ठ तथा शिवलोक में अवस्थित देवतागण भक्तिपरायण होकर भी इसे प्राप्त करने में असमर्थ ही रहते हैं ॥ ८-९ ॥

तपस्यापि न लभ्येत तपोलोकमतः शिवे।
तपोलोकसमो नास्ति लोकमध्ये सुलोचने ॥१०॥

हे सुलोचने ! यह तपस्या से भी प्राप्त नहीं हो सकता। इसके समान कोई भी लोक नहीं है ॥१०॥

सालोक्यं महर्लोके स्यात् सारूप्यं जनलोकके।
सायुज्यं तद् वै लोकेषु निर्वाणं हि तदूर्ध्वके ॥११॥
अतो ब्रह्मादयो देवास्तपोलोकार्थिनः सदा।
तस्य लोकस्य माहात्म्यं मया वक्तुं न शक्यते ॥१२॥

महर्लोक में सालोक्य, जनलोक में सारूप्य, उससे अतिरिक्त लोकों में सायुज्य तथा उससे ऊर्ध्व में निर्वाण प्राप्त होता है।

इसी कारण ब्रह्मादि देवगण सदा तपोलोक में प्रार्थनारत रहते हैं। इस लोक का माहात्म्य शब्दों द्वारा नहीं कहा जा सकता ॥ ११-१२॥

इति ते कथितं कान्ते स्वर्गषट्कस्य लक्षणम्।
यज्ज्ञानादमरत्वञ्च जीवन्मुक्तश्च साधकः ॥१३॥
यज्ज्ञानाज्जननीगर्भं न विशन्ति कदाचन।
आयुरारोग्यमैश्वर्यं स प्राप्नोति न संशयः ॥१४॥

हे प्रिये ! इस प्रकार मैंने छः प्रकार के स्वर्गों का लक्षण कहा है। इसे जानकर साधकगण जीवन्मुक्त हो जाते हैं।

जो इसे जानते हैं, वे जननी-गर्भ में आकर जन्म लेने के चक्रमण से छुटकारा पा जाते हैं। वे जीवितावस्था में आयु, आरोग्य तथा ऐश्वर्य प्राप्त करते हैं। यह निःसंदिग्ध है ॥ १३-१४ ॥

पुराणानि च सर्वाणि मयैवोक्तानि पार्वति।
एतद्रूपञ्च तन्मध्ये वक्तृरूपो न विद्यते ॥१५॥

हे पार्वती ! मैंने ही समस्त पुराणों को कहा है; परन्तु उनमें भी यह (रहस्य) नहीं कहा गया है ॥१५॥

गूढज्ञानञ्च तन्मध्ये अतः किञ्चिन्न बुध्यते।
अष्टादशपुराणानि साङ्गं वेत्ति च यो नरः ॥१६॥

उन सब में यह गूढ़-ज्ञान ज्ञेय है। हे सुनयने ! ज्ञान में भी वेद-शास्त्ररूप शब्दज्ञान प्रधान है। इसके अतिरिक्त कोई भी ज्ञान है ही नहीं ॥१६॥

तस्य स्थाने पुराणानां सदा श्रवणमाचरेत्।
मूढे च चाल्पपाठज्ञे न श्रोतव्यं कदाचन ॥१७॥
शास्त्रस्य लक्षणं ह्येतद् व्याख्ये चान्यत् प्रकाशते।
शम्भुब्रह्मस्वरूपश्च मम वक्त्राद्विनिर्गतः ॥१८॥

जो व्यक्ति अष्टादश पुराणों को उनके अङ्ग के साथ जानता है, उससे ही पुराणों को सुने। मूढ़ तथा अल्पज्ञ से पुराण सुनना उचित नहीं है।

इस प्रकार की शास्त्र-व्याख्या को सुनना चाहिये। इससे सुनने वाला भी प्रकाशित हो जाता है। मैंने यह शास्त्र-लक्षण कहा है। ब्रह्म स्वरूप शम्भु का कीर्त्तन मेरे मुख से निर्गत हुआ ॥१७-१८॥

सन्देहो नैव कर्त्तव्यो यदि मुक्ति प्रयच्छसि।
सन्देहात् पामरो याति रौरवं पितृभिः सह ॥१६॥
ज्ञानञ्च निर्मलं कृत्वा बुद्धिञ्च निर्मलां ततः।
महाभक्तियुतो भूत्वा सर्वप्राणिहिते रतः ॥२०॥

मुक्तिकामी को सन्देह करना उचित नहीं है। सन्देह करने वाला पितरों के साथ रौरव नरक को प्राप्त होता है।

ज्ञान को निर्मल करे, बुद्धि को भी निर्मलीभूत करे। साथ ही महाभक्ति से युक्त होकर सभी प्राणियों की हित-कामना करे ॥१९-२०॥

शब्दब्रह्ममयं देवि शृणोति तन्त्रविद् यदि।
तदा मुक्तिमवाप्नोति सत्यं सत्यं न संशयः ॥२१॥
अष्टादशपुराणानां श्रवणे नैव यत् फलम्।
चतुर्वेदानां साङ्गानां श्रवणे नैव यत् फलम् ॥२२॥
मेरुतुल्यं सुवर्णञ्च गुरवे ब्रह्मरूपिणे।
यशस्यां परमेशानि सप्तद्वीपां वसुन्धराम् ॥२३॥
प्रदद्याद् भक्तिभावेन यदि स्याद् वेदपारगे।
तस्माद् वै परमेशानि फलं बहुविधं शिवे ॥२४॥

ऐसा तन्त्रवेत्ता यदि शब्दब्रह्ममय तत्त्व सुनता है, उससे वह मुक्ति प्राप्त कर लेता है।

यह निःसंदिग्ध है। हे शिवे! अष्टादश पुराण तथा अंगों सहित वेद श्रवण करना, ब्रह्मरूपी गुरु को सुमेरु के समान सुवर्णदान करना, वेदपारंगत ब्राह्मण को भक्तिसहित सप्तद्वीपमयी पृथ्वी दान करना

उतना फलदायक नहीं होता, जितना फल इस शास्त्र को सुनने से होता है ॥२१-२४॥

अस्य तन्त्रस्य चार्वङ्गि शृणोति पटलं यदि।
तत्फलात् कोटिगुणितं फलं स लभते ध्रुवम् ॥२५॥

॥ इति श्रीमहामोक्षतन्त्रे नवमः पटलः॥

हे सुन्दर अवयवों वाली! इस तन्त्र-पटल को सुनने से उपरोक्त फल की तुलना में कोटिगुणित फल प्राप्त होता है ॥२५॥

॥ श्रीमहामोक्षतन्त्र का नवम पटल समाप्त ॥

अथ दशमः पटलः

श्रीशंकर उवाच

ज्ञानपद्मस्योर्ध्वदेशे सहस्रदलपंकजम्।
अधोवक्त्रं महावक्त्रं सुमेरोर्मूर्ध्नि संस्थितम् ॥१॥
यस्य पत्रं महेशानि सर्वशक्तिसमन्वितम्।
शुक्लं रक्तं तथा पीतं कृष्णं हरितमेव च ॥२॥
नानाविचित्ररूपेण नानावर्णेन शोभितम्।
शुक्लं क्षणे क्षणे रक्तं क्षणे पीतं सुशोभनम् ॥३॥

श्रीशंकर कहते हैं—ज्ञानपद्म के ऊर्ध्व से सुमेरु के निम्न प्रदेश में विशाल सहस्रदल पद्म अवस्थान करता है।

हे महेशानी! उसके पत्र समस्त शक्तियुक्त हैं तथा शुक्ल, रक्त, पीत, कृष्ण तथा हरित वर्ण हैं।

उसके नाना विचित्र रूपवाले, नानावर्ण से सुशोभित पत्र क्षण-क्षण में शुक्ल, क्षण-क्षण में पीत, क्षण-क्षण में रक्तवर्ण का द्योतन कराते रहते हैं ॥ १-३ ॥

कस्मिन् क्षणे शुक्लवर्णं हरितं वर्णमुत्तमम् ।
चित्ररूपञ्च चार्वङ्गि धत्ते कस्मिन् क्षणे प्रिये ॥४॥
एवं नानाविधैर्देवि तत्पद्मं शोभितं सदा ।
यथैव गोलोकं धाम प्रतिपत्रे तथैव हि ॥५॥

हे सुन्दर अंगों वाली प्रिये ! वे पुनः कभी शुक्लवर्ण, उत्तम हरित वर्ण रूप से, विचित्र रूप से शोभित होते रहते हैं ।

हे देवी ! इस प्रकार से वह पद्म सदा नव-नव रूप में सुशोभित होता रहता है । जैसे सम्पूर्ण गोलोकधाम की शोभा है, वैसे ही इसके प्रत्येक पत्र शोभायमान रहते हैं ॥ ४-५ ॥

गोलोकस्य पतिस्तत्र भक्तिभावपरायणः ।
कैलासाधिपतिर्देवि ध्यानयोगं सदाभ्यसेत् ॥६॥
एवं ब्रह्मादयो देवा इन्द्राद्यास्त्रिदशेश्वराः ।
स्तुतिभक्तिपराः सर्वे दिव्यभावैः सदा स्थिताः ॥७॥

हे देवी ! वहाँ गोलोकाधिपति तथा कैलासाधिपति भक्ति-भावपूर्वक सर्वदा ध्यानयोग का अभ्यास करते रहते हैं ।

वहाँ ब्रह्मादि देव तथा इन्द्रादि समस्त देवतागण भी स्तुति एवं भक्तिपूर्वक अवस्थान करते हैं ॥६-७॥

लक्षं लक्षं महेशानि तथैव मुरलीधरः ।
शतलक्षं शिवस्तत्र ब्रह्मा लक्षशतं प्रिये ॥८॥
प्रत्यहं परमेशानि ब्रह्माण्डा बहवो भवेत् (?) ।
तन्मध्ये स्थापयेद् ब्रह्मा तथैव कमलापतिम् (:) ॥९॥

हे प्रिये ! महेशानी ! वहाँ लक्ष-लक्ष मुरलीधर, शतलक्ष शिव, शतलक्ष ब्रह्मा विराजित हैं ।

हे परमेश्वरी ! वहाँ प्रतिक्षण असंख्य ब्रह्माण्डों की सृष्टि होती रहती है । उन सभी ब्रह्माण्डों में ब्रह्मा तथा कमलापति स्थापित हैं ॥८-९॥

शिवं बहुविधाकारं तत्रैव स्थापनञ्चरेत् ।
एवं हि परमेशानि नानाशक्ति प्रविन्यसेत् ॥१०॥
प्रतिब्रह्माण्डमध्ये तु ब्रह्मादि देवतात्रयम् ।
नानाशक्तियुतं कृत्वा ब्रह्माण्डस्थापनञ्चरेत् ॥११॥

हे परमेशानी ! इस प्रकार वहाँ नाना रूप वाले शिव एवं नाना रूप वाली शक्तियों की स्थिति है । प्रत्येक ब्रह्माण्ड में ब्रह्मा, विष्णु तथा शिवरूपी देवतात्रय को नाना शक्ति से समन्वित करके स्थापित किया गया है ॥ १०-११॥

ब्रह्मपद्मे पृथिव्यन्ते वर्त्तन्ते मानुषादयः ।
ते सर्वे देवि ब्रह्माण्डास्तन्मध्ये भुवनानि च ॥१२॥
पातालसप्तकं तत्र तत्रैव स्वर्गसप्तकम् ।
एवं क्रमात् सर्वदेहे भुवनानि चतुर्दश ॥१३॥

ब्रह्मपद्म की पृथ्वी में मनुष्यादि जीव रहते हैं । हे देवी ! वे समस्त ब्रह्माण्ड चतुर्दश भुवन, सप्त पाताल तथा सप्त स्वर्ग-युक्त हैं । इस कारण समस्त देह में चतुर्दश भुवनों की सत्ता है ॥ १२-१३ ॥

प्रतिदेहं परेशानि ब्रह्माण्डं नात्र संशयः ।
कथितं बाह्यदेशस्य ब्रह्माण्डस्य च लक्षणम् ॥१४॥
यन्मध्ये वर्त्तते साक्षाद् भुवनानि चतुर्दश ।
तदेव विग्रहं देवि महाब्रह्माण्डमध्यगम् ॥१५॥

यह निःसन्दिग्ध है कि प्रत्येक देह में ब्रह्माण्ड विद्यमान है । मैंने तुमसे बहिःस्थित ब्रह्माण्डों का लक्षण कहा है । जिसमें चतुर्दश भुवन साक्षाद्-रूपेण विद्यमान हैं, वही महाब्रह्माण्डान्तर्गत प्रत्यक्ष विग्रह है ॥१४-१५॥

एवं बहुविधं देवि तत्र ब्रह्माण्डके क्षितौ ।
बृहद् ब्रह्माण्डा ये सर्वे तेऽपि जायशरीरिणः ॥१६॥

पृथिव्यां तेऽपि वर्त्तन्ते जन्तोराकारविग्रहाः ।
महाब्रह्माण्डमध्ये तु बृहद्ब्रह्माण्डस्तिष्ठति ॥१७॥

हे देवी ! इस क्षिति-ब्रह्माण्ड में (पृथ्वीतत्त्व के ब्रह्माण्ड में) इस प्रकार अनेक प्रकार के पदार्थ अवस्थित हैं। बृहद् ब्रह्माण्ड के जो जन्य शरीरी हैं, वर्तमान पृथ्वी में वे ही जन्तु रूप आकृति धारण करके अवस्थान करते हैं। महाब्रह्माण्ड मेरे बृहद् ब्रह्माण्ड की सत्ता है ॥ १६-१७ ॥

तन्मध्ये जन्तवो देवि तन्मध्ये भुवनानि च ।
सृष्टिमार्गेण भेदोऽस्ति स्थूलसूक्ष्मादिभेदतः ॥१८॥
महाब्रह्माण्डके यद्यद् प्रकारं परमेश्वरि ।
तत्तत् सर्वं हि देवेशि बृहद्ब्रह्माण्डमध्यतः ॥१९॥

उसी में जन्तु समूह भी हैं। उसमें भुवन समूह विराजित रहते हैं। स्थूल तथा सूक्ष्मादि क्रम से सृष्टि मार्ग में इनमें भेद लक्षित होता है।

हे देवी ! परमेश्वरी ! महाब्रह्माण्ड में जहाँ जो जिस प्रकार से है,वही उस प्रकार से ही बृहद् में भी विराजित है ॥ १८-१९॥

तद्रूपञ्च देहमध्ये भुवनानि चतुर्दश ।
सृष्टिप्रकारब्रह्माण्डे भेदो नास्ति सुनिश्चितम् ॥२०॥
स्थूलः सूक्ष्मो हि चार्वङ्गि भेदकः परिचायकः ।
पद्ममध्ये बीजकोषे भुवनानि चतुर्दश ॥२१॥

उसी प्रकार देह में भी चतुर्दश भुवन विद्यमान हैं। सृष्टि में इसमें कोई भी भेद नहीं है। यह तथ्य सुविश्चित सा है।

हे सुन्दर अवयवों वाली ! स्थूल तथा सूक्ष्म ही भेदों के परिचायक हैं। पद्ममध्यस्थ बीजकोष में चतुर्दश भुवन विद्यमान रहते हैं ॥२०-२१॥

स्थानं बहुविधाकारं सर्वदेवस्य चाश्रयम् ।
तन्मध्ये सत्यलोकञ्च महारुद्रस्य कारणम् ॥२२॥
दशकास्तेन स्वर्गेण निर्मितं चक्रपाणिना ।
दिक्षु तोयमण्डलञ्च यथा पूर्णेन्दुमण्डलम् ॥२३॥

इसमें समस्त देवताओं का आश्रय नाना स्थान विद्यमान रहता है। इसी में महारुद्र के लिए सत्यलोक अवस्थित है।

चक्रपाणि विष्णु ने इस स्वर्ग के दश दिक् का निर्माण किया है। दिक्समूह में पूर्ण चन्द्रमण्डल के समान तोयमण्डल अवस्थित है ॥ २२-२३ ॥

परितः परिजानीयाद् मध्ये कल्पद्रुमं पुनः ।
कल्पवृक्षस्य निकटे ज्योतिर्मण्डलमुत्तमम् ॥२४॥
उद्यदादित्यसंकाशं चतुर्द्वारविभूषितम् ।
मन्दवायुसमायुक्तं गन्धधूपैरलङ्कृतम् ॥२५॥

इसके मध्य में कल्पवृक्ष है। कल्पवृक्ष के समीप ज्योतिर्मण्डल अवस्थित है। वह उदयकालीन सूर्य के समान चार द्वारों से युक्त है। जहाँ वायु मन्द-गति से प्रवाहित होती है। वह गन्ध तथा धूप के द्वारा अलंकृत है॥ २४-२६ ॥

तन्मध्ये वेदिका देवि रत्नसिंहासनं प्रिये ।
महाकाली परमात्मा चणकाकाररूपतः ॥२६॥
माययाच्छादितात्मानं तन्मध्ये समभागतः ।
महारुद्रः स एवात्मा महाविष्णुः स एव हि ॥२७॥
महाब्रह्मा स एवात्मा नाममात्रविभेदकः ।
एकमूर्त्तिस्त्रयं नाम ब्रह्मा-विष्णु-महेश्वराः ॥२८॥

हे देवी ! उसके मध्य में वेदिका है। उस पर रत्न-सिंहासन है। उस रत्न-सिंहासन पर चणकाकृति महाकाली तथा परमात्मा अवस्थान करते हैं।

वे स्वयं को माया द्वारा आच्छादित करके समान भाव से विराजित हैं। वही आत्मा महाब्रह्मा, महाविष्णु तथा महारुद्र हैं। केवल इनका नाम ही पृथक्-पृथक् है। वास्तव में ये सभी एक ही हैं। एक रूप हैं ॥ २६-२८॥

नानाभावे मनो यस्य तस्य मोक्षो न विद्यते।
ब्रह्माण्डास्तत्र जायन्ते लक्षं लक्षं सुलोचने ॥२६॥
तत्र ब्रह्मा तत्र हरिस्तत्र रुद्रः प्रविन्यसेत्।
एवं ब्रह्माण्डनिर्माणं कृत्वा विष्णुः सनातनः ॥३०॥
सवीरमूर्त्तिं निर्म्माय यथा जन्तोश्च विग्रहम्।
एवं ब्रह्माण्डं विविधं नित्यं सृजति निर्गुणः ॥३१॥

हे सुनयने ! जिनका मन नानात्व भाव से आच्छन्न है, उन्हें मोक्ष प्राप्त नहीं होता। वहाँ लाखों-लाखों ब्रह्माण्ड विद्यमान हैं और ब्रह्मा, विष्णु तथा रुद्र विन्यस्त हैं। सनातन विष्णु निर्गुण हैं, तथापि इस प्रकार से ब्रह्माण्ड की सृष्टि करके सवीर-मूर्ति हैं और जन्तुओं के आकार का निर्माण करते हुए नित्य विविध ब्रह्माण्डों की रचना करते रहते हैं ॥ २९-३१ ॥

निर्गुणे बिन्दुरूपश्च सिद्धिकारणमेव हि।
केचिद्वदन्ति ब्रह्मा कैश्चिद् विष्णुः प्रकथ्यते ॥३२॥
केचिद् रुद्रो महापूर्ण एको देवो निरञ्जनः।
आद्याशक्तियुतो देवश्चणकाकाररूपकः ॥३३॥

निर्गुण उपासना में बिन्दु-उपासना ही सिद्धि का कारण है। उसे कोई ब्रह्मा, कोई विष्णु, तो कोई महेश्वर कहते हैं। कोई-कोई उसे रुद्र भी कहते हैं। वास्तव में वह देव महापूर्ण, एक, निरञ्जन तथा आद्या-शक्तियुक्त चणक रूप है ॥३२-३३॥

इन्द्रजालस्य द्वीपाभः चन्द्रसूर्याग्निरूपकः।
महाक्षोभी निर्विकारः सत्यं सत्यं सनातनः ॥३४॥
सत्यलोकं बीजकोषे चिन्तामणिगृहे शुभे।
ध्यायेन्निरञ्जनं देवि रत्नसिंहासनोपरि ॥३५॥

वे इन्द्रजाल के द्वीपस्वरूप हैं। चन्द्र-सूर्य तथा अग्निरूप है। महा-क्षोभी, विकाररहित तथा सत्य-सनातन हैं। हे देवी ! सत्यलोक में

बीजकोष में, मंगलमय चिन्तामणिगृह के रत्नसिंहासन के ऊपर निरंजन स्वरूप आत्मा ध्यान करना चाहिए ॥३४-३५॥

तस्यान्तिके निजगुरुं पूजाध्यानपरायणम्।
सकान्तं पूजयेद्देवं रजताचलसादरम् ॥३६॥

उनके पास पूजा-ध्यान में निमग्न, रजत गिरि के समान शुभ्र, शक्ति के साथ वर्त्तमान देवतास्वरूप निज-गुरु की पूजा करनी चाहिये ॥३६॥

सुरक्तां चारुवदनां सुप्रकाशस्वरूपिणीम्।
एवं कान्तायुतं देवं स्वमूर्धनिस्थं विचिन्तयेत् ॥३७॥

वह शक्ति शोभन रक्तवर्णा, सुन्दरमुखी, सुप्रकाशस्वरूपिणी है। इस प्रकार के शक्तियुक्त गुरुदेव का स्वमस्तक पर अवस्थित रूप में चिन्तन करे ॥३७॥

यथा दर्पणगर्भे तु परिपश्यन्ति पर्वतम्।
सहस्रारे महापद्मे तथा देवं विचिन्तयेत् ॥३८॥
परं ब्रह्मालयं ह्येतत् परं मोक्षालयं प्रिये।
निर्गुणस्यालयं साक्षाद् महाकालालयं शिवे ॥३९॥

जैसे दर्पण में पर्वत दृष्टिगोचर होता है, उसी प्रकार सहस्रदल महापद्म में गुरुदेव का चिन्तन करना चाहिये। हे शिवे ! साक्षात् परब्रह्मालय, परमोक्षालय, निर्गुणालय एवं महाकाली का आलय है ॥३८-३९॥

तथैव वर्त्तते नित्यो निराकारश्च निश्चलः।
यस्य रूपं परानन्दं परावरजगत्पतिम् ॥४०॥
नित्यानन्दपरा देवी काली कलिप्रकाशिनी।
आद्या शक्तिर्महाकाली देवनिर्माणकारिणी ॥४१॥

इस प्रकार यहाँ नित्य निराकार निश्चल परमपुरुष अवस्थान करते हैं। उनका रूप परानन्द तथा परापर जगत्पति स्वरूप है। महाकाली नित्यानन्दमयी, कलिकाल की प्रकाशकर्त्री, आद्याशक्ति तथा देवताओं की सृष्टि करने वाली हैं। ॥४०-४१॥

जायन्ते च क्षितौ ब्रह्मा यस्यां पृथ्व्यां प्रलीयते ।
तोयाच्च बुद्बुदं जातं यथा तोये विलीयते ॥४२॥
जलदे तडिदुत्पन्नं लीयते च यथा घने ।
तथा ब्रह्मादयो देवाः कालिकायां प्रजायते ।
तथा प्रलयकाले तु पुनस्तस्यां प्रलीयते ॥४३॥

इसी आधार में ब्रह्मा प्रादुर्भूत तथा लीन होते हैं। जैसे जल से बुद्बुद सृष्ट होता है और जल में विलीन हो जाता है, यह उसी प्रकार की स्थिति है।

जैसे विद्युत् मेघ से उत्पन्न होकर मेघ में विलीन हो जाती है, उसी प्रकार ब्रह्मादि देवगण कालिका से उत्पन्न होकर पुनः उसी में विलीन हो जाते हैं ॥४२-४३॥

शक्तिज्ञानं विना देवि मुक्तिर्हास्याय कल्पते ।
एकांशेन भवेद् ब्रह्मा एकांशेन जनार्दनः ।
एकांशेन भवेच्छम्भुः कालिकायाः सुलोचने ॥४४॥

हे सुलोचने ! शक्तिज्ञान के अभाव में मुक्ति हास्यास्पद है। देवी कालिका ही ब्रह्मा, जनार्दन तथा शम्भुरूप में प्रादुर्भूत होती हैं ॥४४॥

अपरा सा महाकाली नद्यादीनां समुद्रवत् ।
गोष्पदे च तदा तोयं ब्रह्माद्या देवतास्तथा ॥४५॥

हे शिवे ! जैसे गोष्पद प्रमाण जल समुद्र का ही रूप है, उसी प्रकार ब्रह्मादि देवतागण भी महाकाली के ही रूप हैं ॥४५॥

गोष्पदं किं न जानीयात् समुद्रस्य जलं शिवे ।
तेन ब्रह्मा न जानाति विष्णुः किं वेत्ति शङ्करः ॥४६॥

हे शिवे! गोस्पद प्रमाण जल (गाय के खुर से बने गड्ढे में भरा जल) भी समुद्र से भिन्न नहीं है, यह क्या विज्ञजन नहीं जानते ? इसी प्रकार से ब्रह्मा, विष्णु तथा शंकर भी महाकाली के ही रूपभूत हैं ॥४६॥

सृष्टिकर्त्ता यदा काल्यां तन्यन्ते च सुरादयः ।
तदा प्रलयकाले तु पुनस्तस्यां प्रलीयते ॥४७॥
अतो निर्वाणदा काली पुरुषः स्वर्गदायकः ।
दक्षिणस्यां दिशि स्थाने संस्थितश्च रवेः सुतः ॥४८॥

सृष्टि-स्थिति-संहारकर्त्ता ब्रह्मादि देवगण महाकाली से ही विस्तार प्राप्त करते हैं और प्रलयकाल में वे महाकाली में ही लीन हो जाते हैं। अतः महाकाली ही निर्वाणदात्री तथा स्वर्गदात्री हैं। उनके दक्षिण में रविपुत्र यमराज स्थित रहते हैं। ॥४७-४८॥

कालिनाम्ना पलायन्ते भीतियुक्ताः समन्ततः ।
ततः सा दक्षिणा-नाम्ना त्रिषु लोकेषु गीयते ॥४९॥

काली का नाम सुनते ही यम भीत होकर चतुर्दिक् पलायन करने लगते हैं। इसी कारण काली ही दक्षिणाकाली रूप से त्रैलोक्य में विख्यात हैं ॥४९॥

पुरुषो दक्षिणः प्रोक्तो वामा शक्तिर्निगद्यते ।
वामाया दक्षिणाजिह्वा महामोक्षप्रदायिनी ॥५०॥
अतः सा दक्षिणानाम्ना त्रिषु लोकेषु गीयते ।
ईश्वरी या महाविद्या कालिका जगदम्बिका ॥५१॥

पुरुष को दक्षिण तथा शक्ति को वामा कहते हैं। वामा की दक्षिण जिह्वा महामोक्षप्रदायिनी है। इसी कारण उन्हें त्रैलोक्य में दक्षिणा कहा गया है। वे ही ईश्वरी महाविद्या कालिका एवं जगज्जननी हैं ॥५०-५१॥

साकाररूपा सा देवी चणकाकाररूपिणी ।
हस्तपादादिरहिता चन्द्रसूर्याग्निरूपिणी ॥५२॥
तस्याः स्थानं हि कथितं सत्यलोकं वरानने ।
यत्स्थानं सर्वदेवस्य प्रार्थनीयं सदानघे ॥५३॥

वह साकाररूपा देवी चणकाकारा हैं (चने के समान परिमाण

वाली हैं)। वे हस्तपादादिरहिता और चन्द्र, सूर्य तथा अग्निरूपिणी हैं ॥ ५२ ॥

हे निष्पाप ! हे शोभन आननवाली ! उन देवी का आवास ही सत्यलोक है। उस सत्यलोक की कामना समस्त देववृन्द करते रहते हैं ॥ ५३ ॥

तस्य स्थानस्य माहात्म्यं किं मया कथ्यतेऽधुना ।
सहस्रदलपद्मस्य चैकपत्रे सुलोचने ।
सहस्रगोलोकं धाम यतो वक्तुं न शक्यते ॥५४॥

उस स्थान के माहात्म्य का वर्णन मैं कैसे कर सकता हूँ ? हे सुनयने ! सहस्रदल पद्म के एक-एक रूप में सहस्र गोलोक का अवस्थान है। इससे अधिक मैं कुछ भी नहीं कह सकता ॥५४॥

जन्मान्तरसहस्रेण जिह्वाकोटिशतेन च ।
तद्वक्तुं नहि शक्नोमि एकपत्रस्य शोभनम् ॥५५॥

उसके एक-एक पत्र की शोभा का वर्णन सहस्र जन्मों में शतकोटि जिह्वा के भी द्वारा नहीं किया जा सकता ॥५५॥

अनन्तं हि वरारोहे विरता भव पार्वति ।
किञ्जल्कमध्ये सा देवी किं वक्तुं शक्यते मया ॥५६॥

तन्मध्ये कर्णिकामध्ये तन्मध्ये बीजकोषकम् ।
बीजकोषस्य मध्ये तु सुधासागरमुत्तमम् ॥५७॥

हे पार्वती ! इस कारण तुम इस प्रश्न से विरत हो जाओ। सहस्र पद्म के किंजल्क मध्य में देवी अवस्थित रहती हैं। मैं उनका वर्णन कैसे कर सकता हूँ ?

उसके (पद्म के) मध्य में कर्णिका है। उसके मध्य में बीजकोष है बीजकोष के मध्य में उत्तमरूप सुधासागर विद्यमान रहता है ॥५६-५७॥

लक्षयोजनविस्तारं सुशुभं तोयमण्डलम् ।
तन्मध्ये तु मणिद्वीपं सहस्रयोजनं शिवे ॥५८॥

11909

परितः पारिजातानि कदम्बवनमुत्तमम् ।
मध्ये कल्पद्रुमं तत्र ज्योतिर्मन्दिरमुत्तमम् ॥५९॥

वहाँ लक्षयोजन विस्तृत अत्यन्त सुन्दर तोयमण्डल (जलमण्डल) है। हे शिवे ! उसके मध्य में सहस्र योजन विस्तृत मणिद्वीप अवस्थित है।

उसके चारों ओर पारिजात वृक्ष तथा कदम्ब वन सुशोभित रहता है। उसके मध्य में कल्पवृक्ष है। वहाँ उत्तम ज्योतिपूर्ण मन्दिर भी है ॥५८-५९॥

चतुर्द्वारसमायुक्तं हेमप्राकारभूषितम् ।
मन्दवायुसमायुक्तं गन्धधूपसमन्वितम् ॥६०॥

देवकन्यासहस्रास्तु परिचर्यापरायणाः ।
तन्मध्ये वेदिकां देवि पञ्चाशदक्षरात्मिकाम् ॥६१॥

वह मन्दिर स्वर्ण-प्राचीर द्वारा आवेष्टित और चार द्वारों से युक्त है। वहाँ मन्द-मन्द वायु बहती रहती है और गंध-धूप सुशोभित होता रहता है।

वहाँ सहस्रों देवकन्या परिचर्या करती रहती हैं। हे देवी ! उसके मध्य में ५० वर्ण युक्त वर्णरूपा देवी की स्थिति है ॥६०-६१॥

तस्योपरि महेशानि रत्नसिंहासनं शिवे ।
महाकाली महारुद्रश्चणकाकाररूपकः ॥६२॥

इन्द्रजालस्य पीताभं महाज्योतिः सनातनम् ।
इति ते कथितं कान्ते सप्तस्वर्गं क्रमेण हि ॥६३॥

हे शिवे ! उसके ऊपर रत्नसिंहासन अवस्थित है। उसमें चणकाकार महाकाली तथा महारुद्र विराजमान रहते हैं।

वहाँ इन्द्रजाल के दीप के समान नित्य महाज्योति विराजित है। हे प्रिये ! इस प्रकार तुमसे सप्त स्वर्गों का वर्णन किया है ॥६२-६३॥

श्रुत्वा गोपय यत्नेन न प्रकाश्यं कदाचन।
अतिस्नेहेन देवेशि तव स्थाने प्रकाशितम्।
संक्षेपेण मयाप्युक्तं विस्तारे न हि शक्यते ॥६४॥

॥ इति श्रीमहामोक्षतन्त्रे दशमः पटलः ॥

इसे सुनकर यत्न से गोपित रखना। कभी भी प्रकाशित नहीं करना। हे देवाधीश्वरी! अत्यन्त स्नेह के कारण मैंने यह ज्ञान तुमसे कहा है। इसे संक्षेप में ही कहा है। इसका विस्तार करने में मैं असमर्थ हूँ ॥६४॥

॥ महामोक्षतन्त्र का दशम पटल समाप्त ॥

अथैकादशः पटलः

श्रीचण्डिकोवाच

त्वत्प्रसादान्महादेव पवित्राहं न चान्यथा।
इदानीं श्रोतुमिच्छामि तत्त्वज्ञानं सुदुर्लभम् ॥१॥

श्रीचण्डिका कहती हैं—हे महादेव! आपके अनुग्रह से मैंने पवित्रता प्राप्त की है। इसमें कोई भी संशय नही हैं। अब मैं सुदुर्लभ तत्त्वज्ञान श्रवण की इच्छुक हूँ ॥१॥

श्रीशंकर उवाच

तत्त्वज्ञानादिकथने न शक्यं मम मानसम्।
एतत्प्रशंसाश्रवणे विरता भव सुन्दरि ॥२॥
येन ज्ञानप्रसादेन विष्णुः सर्वगुणाश्रयः।
शृणु देवि प्रवक्ष्यामि ब्रह्मा लोकपितामहः ॥३॥

श्रीशंकर कहते हैं—तत्त्वज्ञानादि कथन की मुझमें कोई भी शक्ति नहीं है। हे भवसुन्दरी! तुम उसकी प्रशंसा सुनने से विरत हो जाओ। उसी ज्ञान के प्रभाव से विष्णु समस्त गुणों के आश्रय हो गये हैं, ब्रह्मा लोकपितामहत्व प्राप्त करते हैं ॥२-३॥

तत्त्वज्ञानप्रसादेन शम्भुः संहारकारकः।
अन्ये मुक्ताश्च ये सर्वे तेऽपि तत्त्वप्रसादतः ॥४॥
तत्त्वज्ञानं परेशानि कथं वा कथ्यते मया।
विरता भव देवेशि न वै पृच्छ पुनः पुनः ॥५॥
इति तस्य वचः श्रुत्वा शाङ्करी वाक्यमब्रवीत्।
यदि तत्त्वं महादेव न मे कथयसि विभो।
प्राणत्यागं करिष्यामि पुरतस्ते न संशयः ॥६॥

इसी तत्त्व के प्रसाद से शम्भु ने लोकसंहारकत्व प्राप्त किया है। इनके अतिरिक्त जो भी मुक्त हुये हैं, उन्हें तत्त्वज्ञान की ही कृपा से मुक्ति प्राप्त हो सकी है। हे परमेशानी! मैं इस तत्त्वज्ञान का वर्णन कैसे कर सकता हूँ? अतः तुम बारम्बार इस प्रकार के प्रश्न से विरत हो जाओ।

महादेव का यह वाक्य सुनकर महादेवी कहती हैं—हे विभो! महादेव! यदि आप तत्त्वोपदेश नहीं करते, तब मैं निःसंदिग्ध रूप से आपके सम्मुख प्राणत्याग कर देती हूँ ॥४-६॥

श्रीशंकर उवाच

श्रुत्वा गोपय यत्नेन स्वयोनिमिव सुन्दरि।
मद्यं मांसं तथा मत्स्यं मुद्रां मैथुनमेव च।
पञ्चतत्त्वमिदं देवि निर्वाणमुक्तिहेतवे ॥७॥

श्रीशंकर कहते हैं—हे सुन्दरी! इस तत्त्वज्ञान को सुनकर इसे उतना ही गुप्त रखना, जितना गुप्त स्त्रीगण अपनी योनि को रखती हैं। मद्य, मत्स्य, मांस, मुद्रा तथा मैथुन ही मुक्ति के पंचतत्त्व हैं ॥७॥

अष्टैश्वर्यं परं मोक्षं मद्यपानेन शैलजे।
मांसभक्षणमात्रेण साक्षान्नारायणो भवेत् ॥८॥

मुद्रासेवनमात्रेण भूपूज्यो विष्णुरूपधृक् ।
मैथुनेन महायोगी मम तुल्यो न संशयः ॥९॥

हे पर्वतनन्दिनी ! मद्यपान से अष्ट ऐश्वर्य तथा मोक्ष प्राप्त होता है । मांस-भक्षण मात्र से साक्षात् नारायणरूपता प्राप्त हो जाती है । मुद्रा-सेवन से विष्णुरूपता तथा पृथ्वी में पूज्य स्थिति प्राप्त होती है । मैथुन से महायोगी रूप मेरे समान स्थिति का लाभ होता है । यह निःसंदिग्ध तथ्य है ॥८-९॥

तन्त्रान्तरे तु देवेशि मयैव कथितं पुरा ।
माहात्म्यं चास्य धर्मस्य पुरैव कथितं मया ॥१०॥
तत्त्वज्ञानमिदं कान्ते निर्वाणमुक्तिकारणम् ।
एकत्र पञ्चतत्त्वन्तु यत्रैव मिलितं भवेत् ।
तत्रैव तु प्रगच्छामि नरा मत्सदृशाः सदा ॥११॥

हे देवेशी ! अन्य तन्त्रों में मैंने तुमसे इस धर्म का माहात्म्य कहा है । हे प्रिये ! यह तत्त्वज्ञान निर्वाण का कारण है । जहाँ यह समस्त पंचतत्त्व मिलित हो जाता है, वहाँ मैं स्वयं जाता हूँ । वहाँ के समस्त मनुष्य वर्ग मेरे ही समान हैं ॥१०-११॥

सा नारी कामिकारूपा मृते तस्यां प्रलीयते ।
ये नराः साधुरूपाश्च तत्त्वज्ञानपरायणाः ।
जीवन्मुक्ताश्च ते प्रोक्ता ब्रह्मरूपा न चान्यथा ॥१२॥
सायुज्यादि महामोक्षं नियुक्तं क्षत्रियादिषु ।
ब्राह्मणः परमेशानि यदि तत्त्वपरायणः ।
सत्यं सत्यं पुनः सत्यं परे तत्त्वे प्रलीयते ॥१३॥

कामिका नारी मृत्यु के अनन्तर महाकाली में लीन हो जाती है । तत्त्वज्ञानपरायण मनुष्य साधु रूप में अवस्थान करते हैं । वे जीवन्मुक्त होकर ब्रह्मस्वरूप को प्राप्त होते हैं । यह निश्चित तथ्य है ।

हे शिवे ! क्षत्रियादि के लिये तो सायुज्यादि महामोक्ष का निरूपण

किया गया है । यदि ब्राह्मण तत्त्वज्ञानपरायण है, उस स्थिति में वह ब्राह्मण परतत्त्व मे विलीन हो जाता है । यह सत्य वचन है ॥१२-१३॥

यथा तोयं तोयमध्ये लीयते परमेश्वरि ।
तथैव तत्त्वसेवायां लीयते परमात्मनि ॥१४॥
इति ते कथितं कान्ते तत्त्वज्ञानं हि मोक्षदम् ।
येन ज्ञानप्रसादेन मोक्षसिद्धिर्न संशयः ॥१५॥

हे परमेश्वरी ! जैसे जल जल में ही लीन हो जाता है, उसी प्रकार तत्त्वसेवी परमात्मा में विलीन हो जाता है ।

हे प्रिये ! मैंने तुमसे मोक्षदायक तत्त्वज्ञान कहा है । इस ज्ञान के प्रसाद से मोक्षसिद्धि होती है, यह निःसंदिग्ध है ॥१४-१५॥

क्षितिं विना यथा नास्ति संस्थितेः कारणं सदा ।
तोयं विना यथा नास्ति पिपासानाशकारणम् ॥१६॥
तमोहन्ता यथा नास्ति भास्करेण विना प्रिये ।
विना वह्निप्रयोगेण यथा किञ्चिन्न पश्यते ॥१७॥
विना तन्त्रेण देवेशि सुधावृष्टिर्न जायते ।
मातृगर्भं विना कान्ते उत्पत्तिर्न यथा भवेत् ॥१८॥

जैसे पृथ्वी के विना पदार्थ समूह की संस्थिति, स्थिति नहीं होती, जैसे जल के अभाव में पिपासा का नाश नहीं होता, जैसे सूर्य के विना अन्धकार तिरोहित नहीं होता, उसी प्रकार अग्नितत्त्व के अभाव में कुछ भी देख सकना असम्भव है । हे प्रिये ! मातृगर्भ के विना उत्पत्ति नहीं होती । इसी प्रकार तन्त्र के विना सुधावृष्टि ही नहीं हो सकती ॥१६-१८॥

तत्त्वज्ञानं विना देवि तथा मुक्तिर्न जायते ।
अत एव महेशानि गोपनं कुरु यत्नतः ॥१९॥

उसी प्रकार तत्त्वज्ञान के अभाव में मुक्ति नहीं मिलती । हे महेशानी ! इसलिए इस ज्ञान को यत्नपूर्वक गुप्त रखना ॥१९॥

दिव्यभावयुतानाञ्च तत्त्वज्ञानं सदा भवेत् ।
वीरभावयुतानां वै तत्त्वं सेव्यं सदानघे ॥२०॥
न पशोरालये कुर्याद् न पशोर्ज्ञानगोचरे ।
अन्यथा पक्षिकीटस्य दर्शने न हि कारयेत् ॥२१॥

दिव्यभावयुत साधकों के लिये यह तत्त्वज्ञान सदैव विहित है। हे पापरहित देवी ! वीरभावापन्न के लिये भी यह तत्त्व सदा सेव्य है।

पशुभावापन्न के गृह में, उसके दृष्टि-क्षेत्र में, अथवा पक्षि-कीट-भावयुक्त मनुष्यों के सम्मुख कभी भी तत्त्वानुष्ठान न करे ॥२०-२१॥

सिद्धेर्वर्त्म शृणु प्राज्ञे यत् कृत्वा सिद्धिमाप्नुयात् ।
एकां शक्तिं समानीय एकैकः साधुः सदा ॥२२॥
पूजयेद् बहुयत्नेन पञ्चतत्त्वेन कौलिकः ।
एवं कृत्वा लभेत् सिद्धिं नान्यस्य दृष्टिगोचरे ॥२३॥

हे प्राज्ञे ! सिद्धिपथ का श्रवण करो। इससे सिद्धि की प्राप्ति होती है। प्रत्येक साधक को एक-एक शक्ति की व्यवस्था करनी चाहिए। उसकी यत्नपूर्वक पंचतत्त्व से पूजा करे। इस प्रकार सिद्धि प्राप्त करे। यह अनुष्ठान किसी अन्य को दृष्टिगोचर नहीं होना चाहिए ॥२२-२३॥

श्रीचक्रपूजा यत्रैव तत्रैव ध्यानसिद्धये ।
सिद्धिर्न जायते तत्र कदाचिदन्यसन्निधौ ॥२४॥

जहाँ श्रीचक्र-पूजन होता है, वहीं पर ध्यानसिद्धि के लिये तत्त्वानुष्ठान करे। इसे कभी भी अन्य के निकट न करे, अन्यथा सिद्धि नहीं होती ॥२४॥

तत्रैव कामनासिद्धिर्यत्र चक्रं प्रपूजयेत् ।
आयुरारोग्यमैश्वर्यं श्रीचक्रपूजनाल्लभेत् ॥२५॥

जहाँ श्रीचक्र की पूजा होती है, वहीं कामनासिद्धि, आयु, आरोग्य तथा ऐश्वर्य प्राप्त होता है ॥२५॥

कीर्त्तिर्वृद्धिर्यशोवृद्धिर्मुक्तिभोगो न संशयः ।
वाञ्छासिद्धिर्ज्ञानसिद्धिर्देव्याः प्रीतिश्च जायते ।
श्रीचक्रपूजां यः कुर्यात् स एव शम्भुरव्ययः ॥२६॥

जो श्रीचक्र-पूजन करते हैं, उनकी कीर्तिवृद्धि, यशोवृद्धि, मुक्ति-प्राप्ति होती है। वे वांछासिद्ध तथा ज्ञानसिद्ध हो जाते हैं। उन पर देवी की कृपा होती है। वे साक्षात् शम्भुतुल्य हो जाते हैं ॥२६॥

अश्वमेधसहस्राणि वाजपेयशतानि च ।
इष्ट्वा यत्फलमाप्नोति तत् फलं कौलिकार्चने ॥२७॥
वापीकूपतडागादि दत्वा यत्फलमाप्नुयात् ।
तत्फलात् कोटिगुणितं यदि चक्रं प्रपूजयेत् ॥२८॥

सहस्र अश्वमेध, शत वाजपेय याग के अनुष्ठान से जो फल प्राप्त होता है, कौलिक पूजा से भी वही फल प्राप्त हो जाता है।

वापी-कूप-तड़ागादि का दान करने से जो फल मिलता है, श्रीचक्र के पूजन द्वारा उसकी अपेक्षा कोटिगुणित फल की प्राप्ति होती है ॥२७-२८॥

तदन्नं मेरुवत्तुल्यं बिन्दुः सिन्धुसमोपमः ।
पुष्पञ्च मेरुसदृशं यदि चक्रं प्रपूजयेत् ॥२९॥
तन्मध्ये वर्त्तते देवि यदि व्याधियुतो नरः ।
शिवब्रह्मा प्रपूज्यो हि भ्रान्तिं तत्र विवर्जयेत् ॥३०॥

जो चक्रपूजन करते हैं, उनका अन्न मेरु पर्वत के समान विशाल संग्रहयुक्त हो जाता है। उनका जलबिन्दु भी समुद्र के तुल्य तथा पुष्प भी सुमेरुतुल्य प्रतीत होने लगता है। यदि चक्र में व्याधियुक्त व्यक्ति भी है, तब भी वह ब्रह्मा और शिव के समान है। इस विषय में भ्रान्ति नहीं करनी चाहिए ॥२९-३०॥

सूर्यस्य प्रतिबिम्बं यत् तत्तोयं परिपश्यति ।
गंगातोये यथा सूर्यो हीनतोये तथा पुनः ॥३१॥

सूर्यस्य दूषणं नास्ति सूर्यैकः परितिष्ठति ।
तथैव परमेशानि साधके नास्ति दूषणम् ॥३२॥

सूर्य का जो प्रतिबिम्ब जल में पड़ता है, वैसा ही दर्पण में पड़ेगा। निकृष्ट जल में अथवा गंगाजल में भी उसका समान प्रतिबिम्ब परिलक्षित होता है। सूर्य में कोई भी दोष नहीं लगता। इसी प्रकार साधक में भी कोई दोष नहीं रहता ॥३१-३२॥

अत एव महेशानि दूषणं नास्ति रेतसि ।
रेतः पवित्रं परमं शक्तिर्मोक्षस्य कारणम् ॥३३॥

मन्त्रधारण मात्र से साधक की आत्मा शोभित होने लगती है। हे महेशानी! साधक के शुक्र में (वीर्य में) दोष नहीं लगता। रेतः भी अत्यन्त पवित्र है। शक्ति ही मोक्ष का कारण है ॥३३॥

पूजाहीना च या शक्तिर्जपहीना च या पुनः ।
धृत्वा साधकरेतश्च सा नारी कालिका स्वयम् ॥३४॥

पूजारहित अथवा जपरहित होने पर भी जो शक्ति (स्त्री) साधक के वीर्य को धारण करती है, वह स्वयं कालिकातुल्य नारी है ॥३४॥

भ्रान्तिरत्र न कर्त्तव्या यदि मुक्ति समिच्छति ।
या नारी भ्रान्तिसंयुक्ता आगता चक्रमण्डले ।
सप्त जन्मनि सा नारी चाण्डाली पतिवर्जिता ॥३५॥

जिसे मुक्ति की इच्छा है, उसे इस सन्दर्भ में कभी भी भ्रान्त विचारणा नहीं करनी चाहिए। जो नारी भ्रान्तियुक्त होकर चक्रमण्डल में आती है, वह नारी सात जन्मों तक पतिवर्जिता तथा चाण्डाली होकर रहती है ॥३५॥

एवं विरूपां यां नारीमवज्ञां कुरुते यदि ।
धनपुत्रवर्जितश्च स चाण्डालो न चान्यथा ॥३६॥

ऐसी विरूपा कुत्सित नारी की भी जो अवज्ञा करता है, वह धन, पुत्र से रहित होकर चाण्डाल होता है, यह निःसंदिग्ध है ॥३६॥

इति ते कथितं कान्ते तत्त्वज्ञानविमोक्षणम् ।
येषां देहे महेशानि तत्त्वज्ञानं मयोदितम् ॥३७॥
ते पुनर्जननीगर्भे न विशन्ति कदाचन ।
जीवन्मुक्ताश्च ते प्रोक्ताः शिवरूपाश्च ते नराः ॥३८॥

हे कान्ते! मैंने इस तत्त्वज्ञान से प्राप्त होने वाली मोक्षकारी स्थिति को तुमसे कहा है। हे महेशानी! मैं जिसको तत्त्वज्ञान का यह उपदेश देता हूँ, वह कभी भी मातृगर्भ में प्रवेश नहीं करता। वे व्यक्ति जीवन्मुक्त तथा शिवरूप हो जाते हैं ॥३७-३८॥

श्रृणु देवि प्रवक्ष्यामि कौलिकस्य च लक्षणम् ।
यस्मिन् देशे तु यद्द्वारो निर्दिष्टो मन्त्रसाधने ॥३९॥
तद्द्वारेण विशिष्टो यः कौलिकः स च कीर्त्तितः ।
शैवे शाक्ते गाणपे च सौरे चान्द्रे सुलोचने ।
तत्त्वज्ञानमिदं प्रोक्तं वैष्णवे श्रृणु यत्नतः ॥४०॥

॥ इति श्रीमहामोक्षतन्त्रे एकादशः पटलः ॥

हे देवी! कौलिक का लक्षण कहता हूँ, सुनो, जिस देश में मन्त्रसाधना का जो पथ निर्दिष्ट है, जो उस पथ की साधना करते हैं, वे यथार्थ कौलिक हैं। हे सुनयने! शैव, शाक्त, गाणपत्य, सौर तथा चान्द्र मार्ग का यही तत्त्वज्ञान है। अब वैष्णव साधना के तत्त्वज्ञान को यत्नपूर्वक सुनो ॥३९-४०॥

॥ श्रीमहामोक्षतन्त्र का एकादश पलट समाप्त ॥

अथ द्वादशः पटलः

श्रीचण्डिकोवाच

श्रृणु नाथ परानन्द मम प्राणेश्वर प्रभो।
वैष्णवस्य यथा तत्त्वं तन्मे ब्रूहि जगत्पते ॥१॥

श्रीचण्डिका कहती हैं—हे नाथ! परानन्दमय मेरे प्राणेश्वर! प्रभो! जगत्पति! कृपया मेरा निवेदन सुनें। वैष्णवों का तत्त्व किस प्रकार का है? यह बतलाने की कृपा करिये ॥१॥

श्रीशिव उवाच

श्रृणु तत्त्वं वरारोहे वैष्णवस्य त्रिलोचने।
गुरुतत्त्वं मन्त्रतत्त्वं वर्णतत्त्वं सुरेश्वरि।
देवतत्त्वं ध्यानतत्त्वं पञ्चतत्त्वं वरानने ॥२॥

श्रीशिव कहते हैं—हे वरारोहे! त्रिनयने! वैष्णवों के तत्त्व को सुनो। हे सुरेश्वरी! गुरुतत्त्व, मंत्रतत्त्व, वर्णतत्त्व, देवतत्त्व तथा ध्यानतत्त्व को वैष्णवों का पंचतत्त्व कहते हैं ॥२॥

तत्रादौ श्रीगुरोस्तत्त्वं स्नेहाद् वक्ष्यामि पार्वति।
सतैलं वर्त्तिकायुक्तं देहस्थं ब्रह्मतेजसम्।
गुरूणां मन्त्रदानेन तत्सूत्रं दीपितं भवेत् ॥३॥

हे पार्वती! स्नेह के वशीभूत होकर मैं तुमको श्रीगुरुतत्त्व का उपदेश दे रहा हूँ। देह में तैल तथा बत्ती युक्त ब्रह्मतेज स्वरूप दीप जलता रहता है। गुरुप्रदत्त मन्त्र के द्वारा उसे प्रज्वलित करे ॥३॥

देवतायाः शरीरं हि बीजाद्युत्पद्यते ध्रुवम्।
अत एव हि तस्यात्मा देवरूपो न संशयः ॥४॥

बीज द्वारा ही देवता का शरीर उत्पन्न होता है। अतः गुरु की आत्मा ही देवरूप है। इसमें सन्देह नहीं करना चाहिए ॥ ४ ॥

ईश्वरस्य तु यद्वीर्यं तदेव अक्षरात्मकम्।
तेन वर्त्यात्मकं देहं जन्तोरेव न संशयः ॥५॥
मन्त्रवर्णे च ते वर्णा लीयन्ते परमेश्वरि।
वर्णतत्त्वमिदं देवि मम सर्वं स्वयं भवेत् ॥६॥

ईश्वर की शक्ति ही अक्षरात्मिका है। इसी कारण प्राणी की देह बत्ती के समान है। हे परमेश्वरी! देवी! वह वर्णसमूह मन्त्रवर्ण में लीन हो जाता है। यही वर्णतत्त्व है। यह सब मेरा ही स्वरूप है ॥५-६॥

स्वयं देवो न चान्यस्मिन् निर्मलो देवरूपकः।
सर्वत्र देवतां ध्यायेत् तृणगुल्मलतादिकम् ॥७॥

स्वयं को ही देवीस्वरूप जाने। कहीं अन्यत्र देवस्वरूप नहीं है। तृण-गुल्म-लता प्रभृति समस्त पदार्थ में देवता का ही ध्यान करे ॥७॥

ध्यानेन लभते सर्वं ध्यानेन विष्णुरूपकम्।
ध्यानेन सिद्धिमाप्नोति विना ध्यानैर्न सिद्ध्यति ॥८॥
इति ते कथितं कान्ते वैष्णवस्य सुरेश्वरि।
यज्ज्ञानादमृतत्वञ्च विष्णुरूपो भवेन्नरः ॥९॥

ध्यान के द्वारा सब प्राप्त हो जाता है। इससे विष्णुसारूप्य प्राप्त होता है। ध्यान से ही सिद्धि मिलती है। ध्यान के बिना सिद्धि नहीं मिलती।

हे सुरेश्वरी! प्रिये! मैंने तुमसे वैष्णव पंचतत्त्व कहा है। इसका ज्ञान होने पर अमृतत्व की प्राप्ति होती है और मनुष्य विष्णुरूप हो जाता है ॥ ८-९ ॥

यः कुर्यात् परमेशानि तत्त्वज्ञानं मयोदितम्।
स्वर्गमार्गो भवेन् मर्त्यो विष्णुलोके वसेत् सदा ॥१०॥
यदि भक्तियुतो मर्त्यो मनसा चिन्तयन् सदा।
ते नरा नहि गच्छन्ति कदाचिद् मम मन्दिरे ॥११॥

हे परमेशानी! जो मेरे द्वारा कथित इस पंचतत्त्व का अनुष्ठान करते

हैं, वे मृत्युलोकवासी स्वर्ग-पथ को प्राप्त करके सर्वदा विष्णुलोक में वास करते हैं।

मनुष्य सर्वदा भक्तिभाव से मन ही मन पंचतत्त्व की चिन्तना करते हैं, वे कभी भी यम-मन्दिर को प्राप्त नहीं होते ॥१०-११॥

इति ते कथितं तत्त्वं वैष्णवस्य सुरेश्वरि ।
यज्ज्ञानादमरत्वञ्च लभते नात्र संशयः ॥१२॥

॥ इति श्रीमहामोक्षतन्त्रे द्वादशः पटलः ॥

हे सुरेश्वरी ! इस प्रकार मैंने वैष्णव तत्त्व का उपदेश किया। इसे जानने से निःसंदिग्ध रूप से अमृतत्व प्राप्त होता है ॥१२॥

॥ श्रीमहामोक्षतन्त्र का द्वादश पटल समाप्त ॥

अथ त्रयोदशः पटलः

श्रीचण्डिकोवाच

सृष्ट्यात्मकं दशार्णञ्च पुरैव कथितं स्तु मे ।
प्रकाशरूपे तन्मन्त्रं कथयस्व दयानिधे ॥१॥

श्रीचण्डिका कहती हैं—हे दयानिधे ! आपने मुझसे सृष्ट्यात्मक दशार्ण मन्त्र कहा था। उसे पुनः प्रकाशित करने का अनुग्रह करें ॥ १ ॥

श्रृणु देवी प्रवक्ष्यामि मन्त्रं दशाक्षरं परम् ।
यस्य श्रवणमात्रेण मूढोऽपि विष्णुरूपधृक् ॥२॥
पुंमन्त्रो यदि देवेशि शक्तिमन्त्रं जपेद् यदि ।
अज्ञात्वा तन्महामन्त्रं स भवेद् ब्रह्मराक्षसः ॥३॥

अज्ञात्वा तन्महामन्त्रं तत्त्वज्ञानी भवेद् यदि ।
तथापि नरकं गच्छेदिति देवस्य सम्मतम् ॥४॥

श्रीशिव कहते हैं—हे देवी ! मैं श्रेष्ठ दशार्ण मन्त्र कहता हूँ, उसके श्रवण मात्र से मूढ़ व्यक्ति में भी विष्णुरूप का स्फुरण होने लगता है।

इस महामन्त्र को जाने बिना जो साधक शक्ति का जाप करता है, वह मरण के पश्चात् ब्रह्मराक्षस हो जाता है।

यदि तत्त्वज्ञानी भी इस महामन्त्र को जाने बिना जप करता है, तब उसे भी नरक की प्राप्ति होती है। यह देवताओं द्वारा अनुमोदित तथ्य है ॥ २-४ ॥

श्रृणु देवि प्रवक्ष्यामि दशार्णं मन्त्रमुत्तमम् ।
मायाबीजं वधुबीजं लक्ष्मी कालो च पाशकम् ॥
गगनं पक्षिबीजञ्च वह्निकान्तां ततः प्रिये ॥ ५ ॥
इति ते कथितं चण्डि दशाक्षरमनुत्तमम् ।
यद् ज्ञानादमरत्वञ्च लभते नात्र संशयः ॥६॥
अस्य ग्रहणमात्रेण नरो नारायणो भवेत् ।
अस्य प्रसादेन दण्डी सद्यो निर्वाणतां व्रजेत् ॥७॥

हे देवी ! मैं तुमसे यह श्रेष्ठ दशार्ण मन्त्र कहता हूँ, सुनो। मायाबीज (ह्रीं), वधुबीज (स्त्रीं) लक्ष्मीबीज (श्रीं), कालीबीज (ह्रीं), पाशकबीज (हंसः), गगनबीज (हं) पक्षीबीज (आं), वह्निकान्ता (स्वाहा)। यह दशार्ण मन्त्र है। (अर्थात् ह्रीं स्त्रीं श्रीं ह्रीं हंसः हं आं स्वाहा)। हे चण्डी ! मैंने तुमसे यह सर्वोत्तम दशार्ण मन्त्र कह दिया। इसके ज्ञान से निर्वाण प्राप्त हो जाता है। वह नारायण होता है और दण्डी तत्काल मुक्त हो जाता है ॥ ५-७ ॥

दण्डोपरि जपेदेतद् दशार्णं परमेश्वरि ।
अस्य मन्त्रान्महामन्त्रा जायते न कदाचन ॥८॥

हे परमेश्वरी ! दण्ड के ऊपर इस मन्त्र का जप करे। इसकी अपेक्षा

कोई भी श्रेष्ठ मन्त्र नहीं है। समस्त देवगण इसी मन्त्र से ही उत्पन्न होते हैं ॥ ८ ॥

सर्वे देवाः सदाराश्च दशार्णाज्जायते ध्रुवम् ।
महाविद्योपासकश्च दशार्णं नहि पश्यति ॥९॥
इह लोके दरिद्रश्च परे च ब्रह्मराक्षसः ।
तस्माद् यत्नेन देवेशि दशार्णं श्रावयेद् गुरुः ॥१०॥
यः श्रावयेद् दशार्णञ्च स नरो गुरुरुत्तमः ।
मन्त्रदाता यथा देवि तथैव स गुरुः स्मृतः ॥११॥

यदि महाविद्या के उपासकों को दशार्ण मन्त्र का ज्ञान नहीं है, तब वे इस लोक में दरिद्र और परलोक में ब्रह्मराक्षस हो जाते हैं। अतः गुरु को चाहिये कि वह यत्नपूर्वक दशार्ण मन्त्र का उपदेश शिष्य को करे।

जो दशार्ण मन्त्र का श्रवण कराते हैं, वे ही श्रेष्ठ गुरु हैं। हे देवी! मन्त्रदाता गुरु के ही समान हैं, दशार्ण मन्त्र का श्रवण करानेवाले गुरु ॥ ९–११ ॥

दशार्णदाता यो देवि स एव परमो गुरुः ।
यथैव च तरङ्गिण्यां न समाः सकलापगाः ॥१२॥

हे देवी! जो दशार्णदाता हैं, वे ही यथार्थ गुरु हैं। समस्त नदियाँ भी मिलकर गंगा की तुलना नहीं कर सकतीं, वैसे दशार्णदाता ही परम गुरु है ॥ १२ ॥

दशार्णस्य समो नास्ति मन्त्रोऽपि सुरपूजिते ।
त्वत्समा यदि नारी च मत्समः पुरुषोऽस्ति सः ॥१३॥
दशार्णस्य समो मन्त्रः कथयामि वरानने ।
दशकार्णस्य स्वर्गस्य सदृशं मोहमस्ति च ॥१४॥

हे देवपूजिते! दशार्ण के समान कोई मन्त्र नहीं है। इस मन्त्र की श्रोता नारी तुम्हारे समान और इस मन्त्र का श्रोता पुरुष मेरे समान हो जाता है।

हे वरानने! दशार्ण के समान कोई मन्त्र नहीं है। यह मेरा कथन है। स्वर्ग के द्वार के समान इस दशार्ण मन्त्र की समकक्षता करने वाला कोई भी मन्त्र नहीं है ॥ १३–१४ ॥

दशार्णस्य समो मन्त्रः कथयेयुस्तदा प्रिये ।
श्रीप्रसीदो ह्ययं मन्त्रः दशार्णः परमेश्वरि ॥१५॥
ऊर्ध्वाम्नायमहातन्त्रे कथयामि वरानने ।
अतः परं प्रवक्ष्यामि यद्रूपं दण्डधारणम् ॥१६॥

हे प्रिये! दशार्ण मन्त्र के समान कोई भी मन्त्र नहीं है। इसकी प्राप्ति से लक्ष्मी प्रसन्न हो जाती हैं। हे वरानने! मैं यह ऊर्ध्वाम्नाय महातन्त्र के अनुसार कह रहा हूँ। अब दण्डधारण की विधि का उपदेश करता हूँ ॥ १५-१६ ॥

साधुरूपो गृहस्थश्च ब्राह्मणा ब्रह्मवादिनः ।
सर्वमायापरित्यक्तः सदा धर्मपरायणः ॥१७॥
जितेन्द्रियो जितक्रोधः समत्वं सर्वजातिषु ।
पुत्रे रिपौ समत्वञ्च समः स्वर्गे च पार्थिवे ॥१८॥
दयाभावश्च सर्वत्र पुत्रे मित्रे रिपौ भवेत् ।
लाभालाभे जये नाशे निन्दायां पौष्टिके तथा ॥१९॥

साधुस्वरूप गृहस्थ ब्राह्मण, ब्रह्मवादी होकर इन्द्रियजित् हो जाते हैं। वे क्रोधरहित तथा समत्व दृष्टि-युक्त होते हैं। उन्हें पुत्र तथा शत्रु में समान भावना रहती है। उनके लिये स्वर्ग तथा पृथ्वी समान हैं। वे पुत्र, मित्र तथा शत्रु आदि के प्रति समान रूप से दयाभाव रखते हैं। उनके लिये लाभ–हानि, जय-नाश, निन्दा तथा स्तुति भी समान हैं ॥ १७–१९ ॥

काये प्राणे न सम्बन्धः सर्वदा समभावुकः ।
तत्त्वज्ञानं विना ज्ञानं यस्य चित्ते न विद्यते ॥२०॥
संन्यासधर्मस्तस्यैव नान्यस्य सुरपूजिते ।
संन्यासधारणं कार्यं विप्रस्य मुक्तिहेतवे ॥२१॥

वे शरीर तथा प्राण से सम्बन्धरहित होते हैं और उनका चित्त केवल तत्त्वज्ञान को ही धारण करता है। हे देवपूजिते ! उनके लिये ही यह संन्यास धर्म है। अन्य के लिये नहीं है। मुक्ति के लिये इसी प्रकार का संन्यास धारण करना आवश्यक है ॥ २०–२१ ॥

यो विप्रो धारयेद् दण्डं सैव नारायणः स्वयम् ।
चतुर्भुजाः प्रजायन्ते दण्डधारणमात्रतः ॥२२॥
सर्वलक्षणसंयुक्तो ब्राह्मणो गमनं चरेत् ।
गत्वा च दण्डिनं दृष्ट्वा प्रणमेद् दण्डवत् क्षितौ ॥२३॥

जो ब्राह्मण दण्ड धारण करते हैं, वे साक्षात् नारायणतुल्य हो जाते हैं। वे दण्डधारण मात्र से चतुर्भुज हो जाते हैं। सर्वलक्षणयुक्त ब्राह्मण को चाहिये कि दण्डी को देखकर दण्डवत् प्रणाम करे॥ २२–२३ ॥

त्वमेव देवदेवेशस्त्वमेव त्राणकारकः ।
त्वमेव जगतां बन्धुस्त्राहि मां शरणागतम् ॥२४॥
इति श्रुत्वा दण्डधारी पप्रच्छ सादराज्जनम् ।
कस्त्वं कस्य सुतस्त्वं हि कथमागमनं वद ॥२५॥

वह उनकी स्तुति करे "तुम ही देवाधिदेव तथा त्राणकारक हो ! तुम ही संसार के बन्धु और रक्षक हो। मैं तुम्हारी शरण में हूँ।"

यह सुनकर दण्डधारी आगत व्यक्ति से आदर के साथ पूछते हैं—"तुम कौन हो, किसके पुत्र हो, यहाँ क्यों आये हो ?" ॥२४-२५॥

श्रुत्वा तद्वचनं विप्रः प्रोवाचात्मनिवेदनम् ।
विप्रवंशे समुद्भूतोऽमुकोऽहं विवेकवान् ॥२६॥
नास्ति मे पितरौ साक्षाद् नास्ति मे स्त्रीसुतादयः ।
मृतौ मातापितरौ मृता भ्रातादयः सुताः ॥२७॥

दण्डी का यह प्रश्न सुनकर ब्राह्मण आत्मनिवेदन करे। कहे, मैं विप्रवंश में समुद्भूत अमुक विवेकवान् व्यक्ति हूँ। मेरे माता-पिता, भ्रातृ-पुत्रादि नहीं हैं। वे सभी मृत हैं ॥२६-२७॥

पश्चात् स्वकान्तानाशे तु ह्यहमत्यन्ततापवान् ।
अत एव हि भोः स्वामिन् ! देहि मे परमाश्रयम् ॥२८॥
सत्यं कुरु द्विजश्रेष्ठ यदुक्तं वै ममान्तिके ।
मिथ्याभाषणदोषेण ब्रह्मवर्त्म विराजतः ॥२९॥

इसके अनन्तर पत्नी भी नष्ट हो गई। मैं अत्यन्त अनुतप्त हूँ। हे स्वामिन् ! मुझे अपना श्रेष्ठ आश्रय दीजिये।

दण्डी कहते हैं—हे द्विजश्रेष्ठ ! तुमने मुझसे जो कुछ कहा उसे सत्य करो। हे ब्राह्मण ! यदि तुमने मुझसे कुछ भी मिथ्या कहा है, तब तुम परब्रह्म लाभ के पथ से च्युत होगे। यह निःसंदिग्ध है ॥२८-२९ ॥

स्थितायां यौवनाक्तायां कान्तायां परमेश्वरि ।
सर्वं हि विफलं तस्य यः कुर्याद् दण्डधारणम् ॥३०॥

हे परमेश्वरी ! पत्नी रहने पर और पुत्र के बालक रहते ही संन्यास धारण करना वृथा है। ऐसा संन्यास-प्रदाता गुरु तथा संन्यास लेने वाला शिष्य, दोनों ही रौरव नरक में जाते हैं ॥३०॥

पितरौ विद्येते देवि यः कुर्याद् दण्डधारणम् ।
संन्यासं विफलं तस्य रौरवाख्यं स गच्छति ॥३१॥
विद्यते बालभावे च यस्य कान्ता सुतस्तथा ।
संन्यासधारणं तस्य वृथा हि परमेश्वरि ।
स गुरुश्चापि शिष्यश्च रौरवाख्यं प्रगच्छति ॥३२॥

हे देवी ! पिता-माता के रहते जो दण्डधारण करते हैं, उनका परिश्रम व्यर्थ होता है और वे रौरव नरक में जाते हैं। हे परमेश्वरी ! पत्नी तथा पुत्र के रहते (पुत्र के बालक रहते) संन्यास धारण करना व्यर्थ है। जिससे संन्यासदाता और संन्यास लेने वाला–दोनों रौरव नरकगामी हो जाते हैं ॥३१-३२॥

इत्यादि दृढवाक्यस्तु श्रुत्वा दण्डी जितेन्द्रियः ।
संन्यासदानं तस्यैव दद्यान्मुक्तिञ्च शाश्वतीम् ॥३३॥

आदौ दशाक्षरं मन्त्रं प्रथमं श्रावयेद् गुरुः ।
तच्छ्रुत्वा च महावर्त्मगमनं कारयेत् ततः ॥३४॥

इन सब दृढ़ वाक्य का श्रवण करके जो इस स्थिति के और जितेन्द्रिय हों, वे ही दण्डी होने योग्य हैं। उन्हें ही संन्यास देना चाहिये। उन्हें ही नित्य मुक्ति देना उचित है। सर्वप्रथम गुरु दशाक्षर मंत्र श्रवण कराये। उस के पश्चात् महापथ पर गमन करे ॥३३-३४॥

क्रोशं वा क्रोशयुग्मं वा वेगेन गमनं चरेत् ।
गुरुणा सह शिष्येण पृष्ठे पृष्ठे विधावयेत् ॥३५॥
तिष्ठ तिष्ठ महाबाहो मां त्यक्त्वा न हि गच्छतु ।
शिष्यं परमहंसस्त्वं त्वत्समो नास्ति भूतले ॥३६॥
क्षन्तव्यमपराधं मे त्वमेव विष्णुरूपधृक् ।
त्वमेव जगतां बन्धुस्त्वमेव सर्वपूजितः ॥३७॥

गुरु क्रोश अथवा दो कोस वेग से बढ़ता जाये। शिष्य को उसके पीछे-पीछे दौड़ना चाहिये।

वह गुरु से कहे— हे महाबाहो, आप रुकिये। आप मेरा त्याग करके न जायें। आप परमहंस हैं। पृथ्वी में आप के समान कोई नहीं है।

आप मेरा अपराध क्षमा करें। आप विष्णुरूपधारी तथा जगत् के बन्धु हैं। आप सबसे पूजित हैं ॥३५-३७॥

त्वमेव परमो हंसस्तिष्ठ तिष्ठ तु मा व्रज ।
स शिष्यो दण्डिनं देवि इति वाक्यं वदेदतः ॥३८॥
अतः स परमो हंसः पथिकः प्रथमोदितः ।
तस्यैव दर्शनार्थाय चान्तरिक्षे च देवताः ।
सस्त्रीकाः सपरिवाराश्च आयान्ति दिग्विदिक्षु च ॥३९॥

आप ही परमहंस हैं। आप रुकिये। आप न जाइये। हे देवी ! वह शिष्य दण्डधारी से यह कहे। परमहंस ही पथप्रदर्शक हैं। उनके दर्शन के लिये अन्तरिक्ष से, दिग्दिगन्तर से परिवारवर्ग के साथ देवगण भी आ जाते हैं ॥३८-३९॥

एतस्मिन् समये दण्डी शान्तयेत् शिष्यमुत्तमम् ।
फूत्कारं बहुशो दत्वा मन्त्रेणानेन सुव्रतः ॥ ४०॥

इस समय व्रतधारी संन्यासी इस मंत्र को फूत्कार के साथ प्रदान करके शिष्य को शान्त करे ॥४०॥

फूत्कारैर्वायुयोगश्च पुनः प्राणं नियोजयेत् ।
जन्मान्तरस्तु तस्यैव तत्क्षणे जायते किल ॥४१॥
जन्मान्तरं समालोक्य संस्कारमाचरेद् गुरुः ।
कुण्डान्तिके समानीय अन्नप्राशनमाचरेत् ॥४२॥

फूत्कार के द्वारा वायुयोग से नूतन प्राण सन्निवेशित करे और तत्क्षण उसके जन्मान्तर को साधित करे। (यह शिष्य का दूसरा जन्म है, दीक्षा द्वारा यह जन्म हुआ है।)

गुरु शिष्य के जन्मान्तर का अवलोकन करके उसे कुण्ड के समीप लाये और अन्नप्राशनादि संस्कार करे ॥४१-४२॥

अमुकस्त्वं समाभाष्य पुष्पं वह्नौ विनिक्षिपेत् ।
इति नाम्ना तु सम्भाष्य महासंस्कारमाचरेत् ॥४३॥

'तुम अमुक हो' इस प्रकार से कहकर (गुरु) अग्नि में पुष्प छोड़े। अब शिष्य को नये नाम से पुकार कर अनुष्ठानरूपी महासंस्कार कराये ॥४३॥

ततोऽतिदण्डिना देवि ! शिष्याय ज्ञानहेतवे ।
शृणु शिष्य महाभाग ! मद्वाक्यं हृदयं कुरु ॥४४॥
जन्मान्तरस्तु तस्यैव पृथिव्यां नाधिकारिता ।
मृतदेहस्वरूपोऽयं शरीरोऽयं न संशयः ॥४५॥

हे देवी ! इसके पश्चात् विशिष्ट दण्डधारी गुरु ज्ञानार्थ शिष्य से कहे— हे महाभाव शिष्य ! सुनो, तथा मेरे वाक्यों को हृदय में धारण करो।

जिसका जन्मान्तर हो गया, उसका इस पृथ्वी पर कोई भी अधिकार

नहीं है। यह शरीर तो मृतशरीर रूप में परिणत हो चुका है, यह निःसंदिग्ध तथ्य है ॥४४-४५॥

विरतो भव सर्वज्ञ तोयाद्याहारचेष्टया ।
ब्रह्मणेऽपि च यद्दण्डं तन्मात्रभोजनं तव ॥४६॥
पञ्चतत्त्वं समासेव्यं गुप्तभावेन पार्वति ।
सदैव मानसी पूजा सदा मानसतर्पणम् ॥४७॥

अतः तुम सर्वत्र जलादि भोजन से विरत हो जाओ। तुमने ब्रह्मलाभ के लिये जिस दण्ड को धारण किया है, केवल मात्र वही तुम्हारा आहार्य होगा।

हे पार्वती ! गुप्तरूप से पंचतत्त्व का सेवन करना। सर्वदा ही मानस पूजा तथा मानस तर्पण करते रहना ॥४६-४७॥

त्रिसन्ध्यां मानसं यागं नाभिकुण्डे प्रयत्नतः ।
सदैव मानसं भोगं त्यागं कुरु प्रयत्नतः ॥४८॥
षड्वर्गेषु जितो भूत्वा नरो नारायणः स्वयम् ।
तावत्येव न सन्देहो दण्डधारणमात्रतः ॥४९॥

तुम यत्नपूर्वक त्रिसंध्या के समय नाभिकुण्ड में मानस यज्ञ करते रहना। तुम्हारे लिये बहिर्भोग पूर्णतः अविहित एवं त्याज्य हैं।

तुम काम-क्रोध-लोभादि षड्वर्ग को जीतो और दण्ड धारण करके मनुष्यरूपी नारायणरूप हो जाओ, यह निःसंदिग्ध है ॥४८-४९॥

पितृवंशे सप्तदश मातृवंशे त्रयोदश ।
कान्तायाः सप्तमश्चैव लक्ष्मीनारायणो भवेत् ॥५०॥

संन्यासी के पितृकुल के १७ पूर्व पुरुष मातृवंश की १३ पीढ़ी तथा पत्नी के कुल वाले सात पीढ़ी लक्ष्मीनारायण के समान हो जाते हैं ॥५०॥

इति श्रुत्वा वचस्तस्य शिष्यश्चैतदब्रवीद् वचः ।
यदुक्तं मयि मुक्तार्थं तत् करोमि निरन्तरम् ।
पञ्चतत्त्वं सदा सेव्यं कस्माद् भावाद् वदस्व मे ॥५१॥

गुरु का यह वचन सुनकर शिष्य ने कहा कि आप जो कह रहे हैं, उसे मैं पालन करूँगा। पंचतत्त्व का सेवन कैसे करना चाहिये, कृपया यह उपदेश करें ॥५१॥

यत्रैव वर्त्तते दण्डो बहुशिष्यसमावृतः ।
तत्र गत्वा प्रयत्नेन पञ्चतत्त्वविचेष्टया ।
अथवा वीरमध्ये तु यत्नेन गमनं चरेत् ॥५२॥

जहाँ अनेक शिष्य-परिवेष्टित दण्डी अवस्थान करते हैं, वहाँ यत्नपूर्वक जाय और पंचतत्त्व सेवनार्थ वहाँ अवस्थान करे। अथवा जहाँ वीराचारी निवास करते हैं, वहाँ यत्नपूर्वक जाय ॥५२॥

तत्त्वज्ञानी गृहस्थस्य सन्निधाने व्रजेत् किल ।
सुदूरमपि गन्तव्यं यत्रास्ते कुलनायकः ॥५३॥

अथवा तत्त्वज्ञानी गृहस्थ के पास चला जाय। जहाँ कुलपति निवास करते हैं, उस दूरगामी देश में भी जाया जा सकता है ॥५३॥

भिक्षा कार्या न च स्वार्थे देवतायाः कृते पुनः ।
आचार्यपत्नीं दृष्ट्वा तु भिक्षां कुर्यात् समाहितः ॥५४॥
हे मातर्देहि मे भिक्षां कुण्डलीं तर्पयाम्यहम् ।
एवमुक्त्वा ततो दण्डी महासंस्कारमाचरेत् ॥५५॥

अपने लिये कभी भी भिक्षा न माँगे। देवसेवार्थ भिक्षा माँगे। आचार्यपत्नी को देखकर समाहित चित्त से भिक्षा माँगे।

हे जननी ! मुझे भिक्षा दीजिये। मैं कुण्डली का तर्पण करूँगा। इसके अनन्तर दण्डी महासंस्कार का अनुष्ठान करे ॥५४-५५॥

कुण्डान्तिके समानीय होमयेद् विधिपूर्वकम् ।
ततो हुनेत् करं धृत्वा आज्यैरष्टाहुतीः पुनः ।
विपरीतक्रमेणैव कुर्याद् बन्धुविशोधनम् ॥५६॥

कुण्ड के समीप जाकर विधिपूर्वक होम करे। तदनन्तर घृताहुति द्वारा आठ आहुति दे। विपरीत क्रम से आहुति देकर शिष्य की शुद्धि का विधान करे ॥५६॥

ततः कुर्यात् प्रयत्नेन अन्तर्यज्ञोपवीतकम् ।
शिखां तस्य शिखामन्त्रैः पूगमध्ये निधापयेत् ।
मूलेन यज्ञसूत्रस्तु तस्मिन्नेव निवेशयेत् ॥५७॥

तदनन्तर यत्न द्वारा अन्तर्यज्ञोपवीत का विधान करके शिखाबन्धन मन्त्र के द्वारा शिखा बाँधे और मूलमन्त्र द्वारा यज्ञोपवीत की स्थापना करे ॥५७॥

घृतैश्च मृत्तिकापूगं विलिप्य शोधयेत्ततः ।
तत्पूगं मूलमन्त्रेण दण्डमध्ये विनिक्षिपेत् ॥५८॥
पूर्णाहुतिं ततो दद्यात् तत् पूगमानयेत् सुधीः ।
सयज्ञसूत्रं सशिखं तत्पूगं पेषयेत् प्रिये ॥५९॥
ततश्च श्रावयेन्मन्त्रं कालिकायाश्च सुन्दरि ।
अथवा श्रावयेन्मन्त्रं तारायाश्च सुदुर्लभम् ।
मूलमन्त्रं समुच्चार्य पूगस्यापि प्रयत्नतः ॥६०॥

घृत द्वारा मृत्तिका-पूग को लेपन द्वारा शुद्ध करना चाहिये । तदनन्तर उस पूग को मूलमंत्र के द्वारा दण्ड के मध्य में फेंके ।

इसके अनन्तर पूर्णाहुति दे । अब उस पूग को लाये । हे प्रिये ! यज्ञ-सूत्र और शिखा के साथ इस पूग का पेषण करे । उस पर १००८ मूलमन्त्र का जप करे । तदनन्तर कालिका अथवा तारा का सुदुर्लभ मन्त्र सुनाये । तदनन्तर यत्नपूर्वक उस पूग पर मूलमन्त्र का उच्चारण करे ॥५८-६०॥

भक्षणे तत्क्षणात् साक्षादन्तर्यज्ञोपवीतवान् ।
भवत्येव न सन्देहो नरो नारायणः स्वयम् ॥६१॥
बिल्वदण्डं समानीय वंशस्यैकं समानयेत् ।
ततो दण्डे न्यसेद् न्यासान् कालिकायाः प्रयत्नतः ॥६२॥
जीवन्यासं ततः कृत्वा दण्डे देवीं विचिन्तयेत् ।
बिल्वदण्डस्थचैतन्यं वंशदण्डे नियोजयेत् ॥६३॥

अब तत्क्षण भक्षण करे । इससे साधक शिष्य अन्तर्यज्ञोपवीतवान् तथा

साक्षात् नारायण के समान हो जाता है । यह निःसंदिग्ध है । इसके अनन्तर जीवन्यास करके दण्ड में देवी का चिन्तन करे । बिल्वदण्डस्थ चैतन्य को वंशखण्ड (बाँस के खण्ड) में योजित करे ॥६१-६३॥

इष्टदेवीस्वरूपेण दण्डोऽयं परमेश्वरि ।
शिष्यस्य दक्षिणे हस्ते दण्डस्थापनमाचरेत् ॥६४॥
कमण्डलुं समानीय ब्राह्मणं प्रजपेत् सुधीः ।
वारुणीः निक्षिपेत् तत्र ततो मूलमनुं जपेत् ॥६५॥
अष्टोत्तरशतं जप्त्वा तस्य वामकरे न्यसेत् ।
गैरिकं कौपिनं वस्त्रं यत्नेन परिधापयेत् ॥६६॥

हे परमेश्वरी ! यह दण्ड इष्टदेवी स्वरूप है । शिष्य के दक्षिण हस्त में दण्ड देना चाहिये ।

कमण्डलु लाकर वारुण बीज (वं) का जप करे । तदनन्तर वारुणी (कारण) छिड़कते हुये मूलमन्त्र का जप करे ।

१०८ जप करके शिष्य के वामहस्त में कमण्डलु धारण कराये । तदनन्तर गेरुआ रंग का कौपीन पहनाये ॥६४-६६॥

दण्डधारणमात्रेण नरो नारायणो भवेत् ।
अद्यावधि महामायां दण्डोपरि विभावय ॥६७॥

दण्ड धारण करते ही नर भी नारायण हो जाता है । अब गुरु शिष्य से कहे- आज से तुम दण्ड पर महामाया का चिन्तन करना ॥६७॥

कुरु पूजां महाकालीं दण्डोपरि विभावय ।
साक्षान्नारायणस्त्वं हि दयाधर्मपरो भव ।
तव माता पिता स्वामी सर्वं दण्डात्मकं स्थितम् ॥६८॥
सोऽनुपदगमनं गेहे गृहस्थस्य द्विजस्य च ।
नारायणं समाभास्य द्वारं तस्य व्रजेत् सुधीः ॥६९॥

दण्ड पर महाकाली की पूजा तथा ध्यान करना । तुम साक्षात्

नारायण स्वरूप हो। अब दयाधर्म को आश्रय लो। तुम्हारे माता, पिता, स्वामी प्रभृति सभी दण्ड पर ही अवस्थित हैं।

अब शिष्य कुछ पग चलते-चलते "नारायण" कहकर गृहस्थ ब्राह्मण के द्वार पर जाय ॥६८-६९॥

इति श्रुत्वा गृहस्थस्तु पुराञ्जलिपरो भवेत्।
द्वारे च दण्डिनं दृष्ट्वा प्रणमेद् ब्राह्मणो वरः ॥७०॥
भिक्षां दद्यात् प्रयत्नेन मधु मांसं विना प्रिये।
आदाय भिक्षां देवेशि चोरवद् गमनं चरेत् ॥७१॥

गृहस्थ ब्राह्मण नारायण शब्द सुनकर द्वार पर आये और दण्डी संन्यासी को देखकर हाथ जोड़कर प्रणाम करे।

हे प्रिये! गृहस्थ ब्राह्मण यत्नपूर्वक मधु एवं मांसरहित भिक्षा प्रदान करे। हे देवेशी! दण्डी भिक्षा लेकर चोर के समान (चुपचाप) चला जाय ॥७०-७१॥

गृहस्थस्यालये चैव रात्रिवासं च कारयेत्।
तथापि नगरं गत्वा त्रिरात्रं वसतिं चरेत्।
तीर्थभूमिं ततो गत्वा सप्ताहं वसतिं चरेत् ॥७२॥

संन्यासी गृहस्थ के घर एक रात्रि, नगर में त्रिरात्रि और तीर्थ में सप्ताह पर्यन्त रहे ॥७२॥

ब्राह्मणो दण्डिनं दृष्ट्वा प्रणमेद् विधिपूर्वकम्।
तोयपूर्णञ्च देवेशि किं वा शून्यकमण्डलुम्।
दृष्टिमात्रेण तत्पात्रं पूर्णं कुर्याद् द्विजोत्तमः ॥७३॥
कुशाग्रमानं यद्बिन्दु यदि दद्यात् कमण्डलौ।
समुद्रसप्तदानस्य फलं स लभते ध्रुवम् ॥७४॥
दद्यादन्नं यो मोहेन स भवेत् परमाश्रयः।
त्रिंशद्वर्षसहस्राणि ऊषरे विटपी भवेत् ॥७५॥

इति ते कथितं चण्डि संन्यासधारणं परम्।
न वक्तव्यं पशोरग्रे प्राणान्तेऽपि कदाचन ॥७६॥

॥ इति श्रीमहामोक्षतन्त्रे त्रयोदशः पटलः ॥

ब्राह्मण संन्यासी को देखते ही विधिवत् प्रणाम करे। हे देवेशी! ब्राह्मण दण्डी के कमण्डलु को जलपूर्ण अथवा जलशून्य (जैसा भी हो वैसा) देखते ही उसमें कारण भरे।

कमण्डलु को बिन्दु परिमाण भी भरने से सप्तसमुद्र दान के बराबर फल मिलता है।

जो मोहवशात् अन्नादि का दान करते हैं, वे परमाश्रयी होते हैं और तीस हजार वर्षपर्यन्त मरुभूमि में वृक्ष हो जाते हैं।

हे चण्डिके! तुम्हें इस श्रेष्ठ संन्यास की विधि बतलाया। प्राण जाने पर भी इसे प्रकाशित नहीं करना ॥७३-७६॥

॥ श्रीमहामोक्ष तन्त्र का त्रयोदश पटल समाप्त ॥

अथ चतुर्दशः पटलः

श्रीशंकर उवाच

श्रृणु देवि प्रवक्ष्यामि अवधूतो यथा भवेत्।
वीरस्य मुक्तिं जानीयात् सदा तपपरायणः ॥१॥
यद्रूपं कथितं पूर्वं संन्यासधारणं परम्।
तद्रूपं सर्वकर्म्माणि प्रकुर्याद् वीरवल्लभः ॥२॥
दण्डिनां मुण्डनं चैवामावास्यायां चरेद् यथा।
तथा नैव प्रकुर्यात्तु वीरस्य मुण्डनं प्रिये ॥३॥

असंस्कृतकेशनालमुक्तालम्बितमूर्द्धजः ।
अस्थिमालाविभूषञ्च रुद्राक्षान् वापि धारयेत् ॥४॥

श्रीशंकर कहते हैं—हे देवी ! जिस प्रकार से अवधूत होना सम्भव है, अब वह कहता हूँ। जो सर्वदा तपःपरायण हैं, वीर मूर्ति हैं, वे ही अवधूत हैं।

संन्यास के सन्दर्भ में जिस कर्म का उल्लेख किया गया है, वीरवल्लभ अवधूत भी उसी प्रकार समस्त कर्मों का अनुष्ठान करें।

हे प्रिये ! दण्डियों का मुण्डन अमावास्या को होता है। अवधूतों का इस प्रकार से मुण्डन नहीं होता।

अवधूतगण बिखरे, असंस्कृत, बड़े-बड़े बाल से युक्त रहते हैं। वे अस्थिमाला अथवा रुद्राक्ष धारण करते हैं ॥१-४॥

दिगम्बरो वीरेन्द्रश्च अथवा कौपिनी भवेत् ।
रक्तचन्दनदिग्धाङ्गः कुर्याद् भस्मविभूषणम् ॥५॥

क्षमा दानं तपो ध्यानं बालभावेन शैलजे ।
शिवोऽहं भैरवानन्दः समुण्डः कुलनायकः ॥६॥

संविदासेवनं कुर्यात् सदा कारणसेवनम् ।
भवेत् साक्षात् स पुरुषः शम्भुरूपो न संशयः ॥७॥

वे वीरश्रेष्ठ दिगम्बर होते हैं अथवा कौपीन धारण करते हैं। वे शरीर पर रक्त चन्दन का विलेपन करते हैं तथा भस्म से विभूषित रहते हैं।

हे पर्वतनन्दिनी ! अवधूत बालभाव युक्त, क्षमा, दान, तपस्या और ध्यान में निरत रहते हैं। वे इस भाव से ओतप्रोत रहते हैं कि मैं शिव और भैरवानन्द हूँ। वे मुण्ड (कपाल) से युक्त होकर मन्त्र में निरत रहते हैं। वे सर्वदा विजया एवं कारण का सेवन करते रहते हैं। ऐसे पुरुष साक्षात् शम्भु स्वरूप हैं ॥५-७॥

निर्वाणमुक्तिमाप्नोति ब्राह्मणो वीरभावतः ।
अवधूतक्षत्रियश्च सहयोगी न संशयः ॥८॥

स्वरूपोऽपि भवेद् वैश्यः शूद्रोऽपि सह लोकवान् ।
सम्पूर्णफलमाप्नोति विप्रो निर्वाणतां व्रजेत् ॥९॥

ब्राह्मण वीरभाव से मुक्ति को प्राप्त करते हैं। अवधूतगण क्षत्रिय के (वीरभाव के) सहयोगी होते हैं, यह निर्संदिग्ध है।

वैश्यगण सारूप्य, शूद्रगण सालोक्य को प्राप्त होते हैं। ब्राह्मण को सम्पूर्ण फल तथा निर्वाण प्राप्त होता है ॥८-९॥

त्रिभागफलमाप्नोति क्षत्रियो वीरभावतः ।
पादद्वयस्य वैश्यस्य शूद्रस्य चैकपादकम् ॥१०॥
ब्राह्मणन्तु विनान्यस्य संन्यासो नास्ति चण्डिके ।
कुर्यान्मोहेन चान्यत्र सैव पापाश्रयो नरः ॥११॥

वीरभाव में क्षत्रिय त्रिभाग, वैश्य द्विभाग और शूद्र एक भाग फल प्राप्त करते हैं।

हे चण्डिके ! ब्राह्मण ही संन्यास का अधिकारी है। अन्य पुरुष संन्यास ग्रहण करके पाप के ही भागी होते हैं ॥ १०-११॥

गुप्तभावेन देवेशि ! शृणु मत्प्राणवल्लभे ।
संन्यासिना सदा सेव्यं पञ्चतत्त्वं वरानने ॥१२॥
द्वादशाब्दस्य मध्ये च यदि मृत्युर्न जायते ।
दण्डं तोये विनिक्षिप्य भवेत् परमहंसकः ॥१३॥

हे प्राणप्रिये, वरानने, देवेशी ! संन्यासी सदा गुप्तरूपेण पंचतत्त्व का सेवन करता रहे। यदि संन्यास के उपरान्त १२ वर्ष तक मृत्यु न हो, तब दण्ड का जल में निक्षेप करे और परमहंस भाव का अवलम्बन करे ॥ १२-१३ ॥

अवधूताचाररतो हंसः परमपूर्वकः ।
सैव सानन्दविख्याता द्वादशाब्दे सरस्वती ॥१४॥

अवधूतस्य चाख्यातं शृणुष्व पर्वतात्मजे।
वनेऽरण्ये प्रान्तरे च गिरौ च पुर एव च।
एकस्थाने च संस्थित्वा इष्टध्यानादिकं चरेत् ॥१५॥

परमहंस अवधूत आचार में निरत रहकर और १२ वर्ष व्यतीत हो जाने पर आनन्द नाम के साथ सरस्वती शब्द को युक्त करे। अब अवधूत के स्थान के सम्बन्ध में कहता हूँ। सुनो! वे वन, अरण्य, प्रान्तर, पर्वत, नगर अथवा किसी एक स्थान में स्थित रहकर इष्ट का ध्यान करते रहते हैं ॥ १४-१५ ॥

यो मन्त्रदानतत्प्राज्ञः शरणं परिकीर्त्तितः।
श्रेष्ठकेशो जटाजूटः सदात्मवत् समाचरेत् ॥१६॥
अन्तर्यामी महावीरः अवध्यः स च शैलजे।
नानाशास्त्रेषु यो विज्ञो नानाकर्मविशारदः ॥१७॥

जो मन्त्र दान में पण्डित हैं, वे आश्रय रूप में प्रसिद्ध हो जाते हैं। वे उत्तम केश, जटाजूट युक्त होकर सदा आत्मवत् आचरण करते हैं।

हे शैलजे! वे नानाशास्त्र के विद्वान् विभिन्न साधना-कर्म में कुशल, अन्तर्यामी महावीर हैं। उनका अनिष्ट कोई भी नहीं कर सकता ॥ १६-१७ ॥

सदेष्टदेवीभावेन भावयेद् यो हि चाबलाम्।
स एव भारते वीरो महाज्ञानी जितेन्द्रियः ॥१८॥
ऊर्ध्वबाहुः सदा वीरो मुक्तकेशो दिगम्बरः।
सर्वत्र समभावो यः स च नरोत्तमो भवेत् ॥१९॥

जो इष्टदेवी रूप में ही समस्त स्त्री वर्ग को देखते हैं, भारत वर्ष में वे ही महाज्ञानी जितेन्द्रिय तथा वीर कहलाते हैं।

वे सर्वदा ऊर्ध्वबाहु मुक्तकेश दिगम्बर होकर सर्वत्र ही समभाव युक्त रहते हैं। वे ही नरोत्तम हैं ॥ १८-१९ ॥

नानादेशेषु पीठेषु क्षेत्रेषु तीर्थभूमिषु।
भ्रमणं कुरुते नित्यं कुर्याद् यत्नेन पूजनम् ॥२०॥

देवतायाः सदा ध्यानं श्रीगुरोः पूजनं तथा।
अन्तर्यागेषु यो निष्ठः स वीरः परिकीर्तितः ॥२१॥

वे नानादेश में, विभिन्न पीठों में, क्षेत्रों तथा तीर्थों में भ्रमण करते हैं तथा नित्य यत्नपूर्वक पूजा करते रहते हैं।

वे सर्वदा देवध्यान और श्रीगुरु-पूजन में निरत रहते हैं। वे अन्तर्याग में रत रहते हैं। उन्हें वीर कहा जाता है ॥२०-२१॥

अवधूताश्रमे देवि यस्य भक्तिश्च निश्चला।
तस्य तुष्टो भवेत् काली किं न सिध्यति भूतले ॥२२॥
अवधूतं समालोक्य शम्भुं ज्ञात्वा तु पूजयेत्।
शक्तितः पञ्चतत्त्वानि यत्नेनैव निवेदयेत् ॥२३॥
अशक्तः परमेशानि भक्तितः परितोषयेत्।
अवश्यं पूजयेद् वीरं गृहस्थः साधुरूपकः।
यो नार्चयति तं वीरं स भवेदापदाश्रयः ॥२४॥

हे देवी! जिनकी अवधूताश्रम में निश्चला भक्ति है, काली उनके ऊपर प्रसन्न हो जाती हैं और उनके लिये पृथ्वी में कुछ भी असिद्ध नहीं हैं।

अवधूत को देखते ही उन्हें शम्भु मानकर पूजा करनी चाहिये और अपनी शक्ति के अनुसार उन्हें पञ्चतत्त्व निवेदित करे।

जो गृहस्थ असमर्थ है, वह केवल भक्तिभाव से ही उन्हें सन्तुष्ट करें। वीर साधक का पूजन अवश्य करे। जो वीर साधक की पूजा नहीं करता, वह विपत्ति में पड़ता है ॥ २२-२४ ॥

ब्रह्मचर्यं प्रवक्ष्यामि शृणु देवि! समाहितः।
यस्याचरणमात्रेण नरो नारायणो भवेत् ॥२५॥
गैरिकं वसनं कुर्याद् देवताध्यानतत्परः।
फलमूलाहाररतो दुग्धं गव्यं समाहरेत् ॥२६॥

हे देवी! मैं ब्रह्मचर्य का उपदेश करता हूँ। श्रवण करो। समाहित होकर उसका आचरण करने मात्र से मानव नारायण हो जाते हैं।

गैरिक वस्त्र पहन, देवता के ध्यान में तत्पर हो फल-फूल का आहार करे और गाय के दुग्ध का सेवन करे ॥ २५-२६ ॥

शाल्युद्भवं न गृह्णीयात् शूद्रानीतं तथा जलम् ।
ऋतुकालं विना नैव स्वकान्तागमनं चरेत् ॥२७॥

गृहस्थोऽपि महेशानि ब्रह्मचारी सदा गुरुः ।
उदासीनं कदाचिद् वै गुणकर्माधिपो भवेत् ।
तस्य शिष्यस्य कल्याणं कदाचिन्नास्ति चण्डिके ॥२८॥

शालिजात अन्न ग्रहण न करे। शूद्र द्वारा लाया जल न ले। ऋतुकाल के अतिरिक्त अपनी पत्नी के साथ सहवास न करे।

हे महेशानी ! गृहस्थ भी यदि ब्रह्मचारी हैं, तब वे गुरु हो सकते हैं। यदि उदासीन भी गुण तथा कर्म के द्वारा प्राधान्य लाभ करता है, तब वह भी गुरु हो सकता है, तथापि हे चण्डिके ! उसके शिष्यों का कभी भी कल्याण नहीं होगा ॥ २७-२८ ॥

नराणामादिकं देवि न त्याज्यं ब्रह्मचारिणे ।
सर्वत्रैव दयाभावः सदैव ध्यानतत्परः ।
त्रिशूलं धारयेच्चैकं त्रिशिखं वापि धारयेत् ॥२९॥
ताम्रयुक्तं तु रुद्राक्षं कर्णयुग्मे निवेशयेत् ।
यद्देशे विद्यते देवि ! ब्रह्मचारी तपोधनः ।
तद्देशे च स्थिरा लक्ष्मीर्जायते नात्र संशयः ॥३०॥

हे देवी ! मानवगण के प्राथमिक कार्य का त्याग ब्रह्मचारी कभी न करे। सर्वत्र ही दयाभावसम्पन्न और सदा ध्याननिष्ठ रहे। त्रिशूल अथवा त्रिशिख धारण करे। कानों में ताम्रयुक्त रुद्राक्ष को धारण करे। हे देवी ! जिस स्थान में तपस्वी, ब्रह्मचारी निवास करते हैं, वहाँ लक्ष्मी स्थिर होकर अवस्थान करती हैं। यह निःसंदिग्ध है ॥ २९-३० ॥

अथ वक्ष्ये गृहस्थस्य लक्षणं शृणु चण्डिके ।
पाठो होमश्चातिथीनां सेवनं देवपूजनम् ॥३१॥

पितृश्राद्धं कुलाचारं तत्त्वज्ञानं सदाचरेत् ।
निजकान्ता सदा पूज्या निजकान्ता हि देवता ॥३२॥

हे चण्डिके ! अब गृहस्थ का लक्षण सुनो। गृहस्थ का नित्यकार्य है — पाठ, होम, अतिथि की सेवा तथा देवपूजा।

गृहस्थ पितृश्राद्ध, कुलाचार तथा तत्त्वज्ञान का आचरण करे। वह अपनी कान्ता का सदा आदर करे। पत्नी ही उसके लिये देवता है ॥ ३१-३२ ॥

मानसं पूजनं कुर्यात् ततः संजपमाचरेत् ।
मानसो हि महाधर्मो मानसे नास्ति पातकम् ॥३३॥

प्रथमतः मानस-पूजा एवं जप करे। मानस अनुष्ठान ही महाधर्म है। इसमें किसी पाप, प्रत्यवाय की आशंका नहीं रहती ॥३३॥

स्थापयेत् पञ्चतत्त्वानि गेहमध्ये प्रयत्नतः ।
तदैव सर्वसिद्धीशो भवत्येव न संशयः ॥३४॥
सर्वेषां पितृरूपोऽसौ गृहस्थः साधुरूपकः ।
सदाचाररतः श्रीमान् सदा यज्ञपरायणः ॥३५॥

गृहस्थ घर में यत्नपूर्वक पंचतत्त्व स्थापन करे। वह तत्काल समस्त सिद्धियों का अधिपति हो जाता है। इसमें सन्देह नहीं है।

वह सदाचारनिष्ठ, श्रीमान्, यज्ञपरायण साधुरूपी गृहस्थ समस्त आश्रम तथा वर्ण के लिये पितृस्वरूप ही है ॥ ३४-३५ ॥

यस्मिन् मन्त्रे विचारोऽपि सिद्धारिगणदूषणम् ।
ततः सर्वं महेशानि गृहस्थस्य सुनिश्चितम् ॥३६॥

इस गृहस्थाश्रम में मंत्रग्रहण में विचार आवश्यक है। वहाँ सिद्धारिगण दोषादि विद्यमान हैं। अतः हे महेशानी ! उस गृहस्थ के मन्त्रों को विचारपूर्वक-ग्रहण करे ॥ ३१-३२ ॥

सुविचार्य महामन्त्रं गृह्णीयात् साधकोत्तमः ।
एकाक्षरे तथा कूटे मालामुद्रादि वैदिके ॥३७॥

विचारो नास्ति देवेशि स्वप्नलब्धे ततैवच ।
तथापि सुविचार्य गृहस्थस्य महामन्तुः ॥३८॥

साधकश्रेष्ठ उत्तमरूपेण विचारणा के पश्चात् महामंत्र ग्रहण करे। हे देवेशी ! एकाक्षर मन्त्र, कूटमंत्र, मालाभुद्रादि वैदिक मंत्र एवं स्वप्नलब्ध मंत्र में किसी भी विचार की आवश्यकता नहीं है । तब भी सुविचार द्वारा ही गृहस्थ को महामंत्र प्रदेय है ।। ३७-३८ ।।

दण्डीनां दूषणं नास्ति सर्वमन्त्रस्य दीक्षणे ।
गृहस्थाश्रममासाद्य तत्त्वज्ञानेषु योगतः ॥३९॥
स मुक्तः सर्वपापेभ्यः स च साक्षान्महेश्वरः ।
अन्नदानेन यत्पुण्यं तोयदानेन यत्फलम् ।
तत् सर्वं गृहस्थस्य नानाफलमवाप्नुयात् ॥४०॥

इति ते कथितं कान्ते चतुराश्रमलक्षणम् ।
न वक्तव्यं पशोरग्रे प्राणान्तेऽपि सुरेश्वरि ॥४१॥

॥ इति श्रीमहामोक्षतन्त्रे चतुर्दश पटलः समाप्तः ॥

दण्डी के लिए मंत्रदीक्षा में दोष नहीं है । गृहस्थाश्रम में अवस्थान करते हुये जो तत्त्वज्ञान युक्त हैं, वे सर्व पाप से मुक्त हो जाते हैं और वे साक्षात् महेश्वर हैं । अन्नदान का जो पुण्य है, जो जलदान का फल है और भी जो नाना पुण्यफल है, वे सभी गृहस्थ को प्राप्त हो जाते हैं ।

हे सुरेश्वरी ! मैंने तुमसे इन चारों आश्रमों का लक्षण कहा। प्राणों का भंग होने पर भी इसे पशु (पाशबद्ध) के समक्ष प्राकाशित नहीं करना ॥ ३९-४१ ॥

॥ श्रीमहामोक्षतन्त्र का चतुर्दश पटल समाप्त ॥

पुस्तकालय